पीअर रिव्यूड एंड रेफेरीड जर्नल

संयुक्तांक

ISSN 2231-1351

PADCHINHA

पदचिन्ह

जनवरी-जून, 2024 वर्ष 13 अंक 1

Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal ISSN 2231-1351

पदचिन्ह

जनवरी-जून, 2024 वर्ष - 13 अंक - 1

अनुक्रम

	गांधीजी का जंतर	पृष्ठ संख्या
1.	आपातकाल में प्रेस पर सेंसर और लोकवाणी पत्र का प्रकाशन _**राकेश कुमार**	05-15
2.	Tracing the Rich Heritage: The Evolution of Kokborok Drama in Tripura _**Barna Rani Jamatia**	16-21
3.	हिन्दी सिनेमा में भजन का प्रयोग _**विपिन कुमार गौड़**	22-26
4.	सूरजमल जाट और जाट साम्राज्य का चरमोत्कर्ष _**डॉ. ओंकार नाथ चौधरी**	27-33
5.	उन्नीसवीं शताब्दी में महिला उद्धार आन्दोलन _**डॉ. अमर राम**	34-38
6.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति और मीडिया शिक्षा _**डॉ. संजीव कुमार**	39-44
7.	लोक जागृति की चिंता : भोजपुरी नाटक _**संतेश कुमार राजु**	45-51
8.	वृद्धावस्था का दंश झेलती वृद्ध स्त्री: प्रेमचंद की कहानियाँ _**अभय जैन**	52-60
9.	घर-बार छोड़कर संन्यास नहीं लूंगा.. _**यशवन्त कुमार विश्वकर्मा**	61-68
10.	महात्मा गांधी की पत्रकारिता में सामाजिक सरोकार : एक अध्ययन _**डॉ. सौरभ मालवीय**	69-74
11.	छात्रों के सर्वांगीण विकास में कला शिक्षा की भूमिका _**विष्णु कुमार** _**प्रो. ओमप्रकाश भारती**	75-81
12.	विचार पुँज : आचार्य विनोबा और राष्ट्र निर्माण _**रमेश कुमार**	82-85
13.	A Study on The Effect of Altruistic Behavior on The Happiness Level of School Going Male Students _**Neetu Singh** _**Prerna Jyoti**	86-94
14.	संगीत एक सर्वश्रेष्ठ कला _**डॉ. नुतन कुमारी**	95-99
15.	Cultural Consciousness in Political Movements: A Case…_**Kirtima Singh**	100-107
16.	चंद्रकिशोर किशोर जायसवाल का उपन्यास 'दाह' : एक समीक्षात्मक अध्ययन _**पवन कुमार ठाकुर** _**डॉ. निवेदिता कुमारी**	108-113
17.	असमिया भाषा में वाच्य-आधारित क्रियापदों की रूप-रचना _**सुरभि चुतिया**	114-120
18.	जे. सी. कुमारप्पा : अलक्षित व्यक्तित्व _**डॉ. शंभू जोशी**	121-129
19.	आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में सांस्कृतिक संचार की भूमिका _**डॉ. अमृत कुमार**	130-133
20.	200 ईसापूर्व से 250 ईसवी, मध्यकाल और ब्रिटिश काल में आर्थिक परिदृश्य _**सन्तोष कुमार सिंह** _**प्रो. सुधीर कुमार सिंह**	134-136
21.	हिन्दी कविता में 'रूप विधान' _**डॉ. मंजु लाल**	137-140
22.	Financial Literacy in India _**Dr. Atul K, Karn** _**Dr. Abhishek Chauhan**	141-148
23.	NOTES FOR AUTHORS	

गांधीजी का जंतर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तब तो यह कसौटी आजमाओ:

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू पा सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

- महात्मा गांधी

R.N.I. UPHIN/2011/37086 ISSN 2231-1351

संयुक्तांक पीअर रिव्यूड एंड रेफेरीड जर्नल

पदचिन्ह PADCHINHA

वर्ष - 13 अंक - 1 जनवरी-जून, 2024

संपादक

डॉ. अजय परमार

B-30/239 नगवां, लंका, वाराणसी-221005

padchinhahindi@gmail.com

सह-संपादक

डॉ. पंकज कुमार सिंह

मुदित शिक्षा संस्था, त्रिमूर्ति नगर

वर्धा (महाराष्ट्र). पिन कोड - 442001

Mob. 9823696685 **gandhikhadi@gmail.com**

https://www.muditeducation.com/padchinha

© पदचिन्ह में व्यक्त विचार और सर्वाधिकार लेखकों के अपने हैं। प्रकाशित विचारों से संपादक व संपादक-मंडल की सहमति अनिवार्य नहीं है। उक्त सभी पद अवैतनिक हैं। किसी भी वाद-विवाद का न्याय क्षेत्र वाराणसी होगा।

संपादक-मंडल/ रेफेरीड बोर्ड

प्रो. प्रेमनारायण सिंह
निदेशक
अंतर विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षा केंद्र
बी. एच. यू. वाराणसी (उ. प्र.) पिन - 221005

प्रो. नृपेन्द्र प्रसाद मोदी
पूर्व अधिष्ठाता, संस्कृति विद्यापीठ
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

डॉ. मनोज कुमार राय
एसोसिएट प्रोफेसर, गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

डॉ. गोविन्द प्रसाद वर्मा
सहायक प्रोफेसर, मानविकी और भाषा संकाय
महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी
(बिहार) पिन - 845401

डॉ. उमेश कुमार सिंह
म. गां. फ्यूजी गुरुजी सामाजिक विज्ञान अध्ययन केंद्र
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन-442001

डॉ. रणजीत कुमार
सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
मौलाना मजहरूल हक अरबी व फारसी विश्वविद्यालय
पटना (बिहार) पिन- 800001

डॉ. प्रदीप त्रिपाठी
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक
(सिक्किम) पिन-737102

डॉ. अमरेन्द्र त्रिपाठी
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
(उत्तर प्रदेश) पिन-211002

डॉ. परिमल प्रियदर्शी
अनुसंधान अधिकारी, शोध सहायता प्रकोष्ठ
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

डॉ. धीरेन्द्र कुमार राय
सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंप्रेषण विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ. प्र.) - 221005

डॉ. आशीष कुमार
संपादक, सृजन समय
बहुद्देशीय सामाजिक संस्था, वर्धा - 442001

डॉ. श्रीकांत जायसवाल
प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

सलाहकार समिति

डॉ. राजीव रंजन गिरि
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, कला संकाय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली - 110007

डॉ. निशीथ राय
सहायक प्रोफेसर, मानवविज्ञान विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन – 442001

डॉ. उमेश तिवारी
सहायक प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास,संस्कृति और
पुरातत्व विभाग, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय
भागलपुर (बिहार) पिन -812007

पदचिन्ह के लिए प्रकाशक अजय परमार, बी.- 30/239, नगवां, लंका वाराणसी द्वारा प्रकाशित और सूर्या आफसेट, 30, विवेकानंद कालोनी, मलदहिया, वाराणसी में मुद्रित। संपादक : अजय परमार

आपातकाल में प्रेस पर सेंसर और लोकवाणी पत्र का प्रकाशन

राकेश कुमार*

kumarpandeyrakesh035@gmail.com

सारांश

आजाद भारत में अभिव्यक्ति की आजादी को मूल अधिकार के रूप में नागरिकों को प्रदान किया गया। किसी भी सभ्य और लोकतांत्रिक समाज में आजादी की चरम अभिव्यक्ति की आजादी यानी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में ही प्रतिबम्बित होती है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का चरम और सर्वोत्तम प्रदर्श प्रेस की स्वतंत्रता में होती है। भारत की संविधान सभा ने संविधान के भाग-3 में अनुच्छेद-12 से अनुच्छेद-35 में मूल अधिकारों का उल्लेख है। मूल अधिकारों की सुरक्षा और संरक्षा का संवैधानिक दायित्व सर्वोच्च न्यायालय (अनुच्छेद-32) और उच्च न्यायालयों (अनुच्छेद-226) को प्रदान किया गया है ताकि सरकार द्वारा मूल अधिकारों के हनन की स्थिति में इन न्यायालयों का दरवाजा खटखटाकर नागरिक अपने मूल अधिकारों की रक्षा कर सकें। मूल संविधान में भारत के नागरिकों को कुल सात प्रकार के मूल अधिकार प्रदान किये गये थे किन्तु वर्तमान में छह मूल अधिकार अस्तित्वान हैं। इसमें स्वतंत्रता का अधिकार अनुच्छेद-19 से 22 तक में प्रदान किया गया है जिसमें अनुच्छेद-19(1) में वाक् स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति का मूलाधिकार का उल्लेख है। अनुच्छेद-19(1) के अंतर्गत प्रेस की स्वतंत्रता को अभिव्यक्ति और वाक् स्वतंत्रता का चरमोत्कर्ष माना जाता है किन्तु आजाद भारत में कुछ ऐसे अवसर आये जिसमें प्रेस की स्वतंत्रता को खंडित और सीमित करने का प्रयास शासन या सत्ता द्वारा किया गया। प्रेस की स्वतंत्रता को स्वतंत्र भारत में आपातकाल में पूरी तरह नष्ट करने की कोशिश की गई। आपातकाल की घोषणा कर भारत सरकार ने प्रेस पर प्रतिबंध लगाकर उसकी स्वतंत्रता का गला घोंटने का भरसक प्रयास किया।

25 जून, 1975 की मध्य रात्रि में आपातकाल की घोषणा की गई। जीवन और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित कर दिया गया। लोकतंत्र की प्रहरी(Watch Dog) प्रेस से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सेंसरशिप के द्वारा छिन ली गई। कहा जाता है कि प्रेस लोकतंत्र का चौथा स्तंभ होता है और प्रेस की स्वतंत्रता के बिना लोकतंत्र में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की बात करना बेईमानी है। आपातकाल के दौरान प्रेस पर लगाये प्रतिबंधों की वजह से भारत का लोकतंत्र खतरे में घिर गया। प्रेस और पत्रकारों की स्वतंत्रता छिन ली गयी।

प्रस्तावना

वर्तमान में भारत में मीडिया पर आरोप है कि यह दो खेमे में बंटी हुई है। रवीश कुमार जैसे ख्यातिलब्ध पत्रकारों का आरोप है कि वर्तमान समय में मीडिया भारत सरकार के घोर समर्थक और प्रचारक के तौर पर कार्य करती दिख रही। इसका वजह वे भारत सरकार द्वारा अघोषित इमरजेंसी में दबाव का सेंसर मानते हैं। रेमन मैग्सेसे पुरस्कार प्राप्त पत्रकार रवीश कुमार वर्तमान में सरकार समर्थक मीडिया के लिए 'गोदी मीडिया' पदावली का प्रयोग करते हैं और खुद को गोदी मीडिया का प्रबल विरोधी बताते हैं। उनका ऐसा मानना है कि वर्तमान समय

***सहायक आचार्य (अतिथि), पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग**

डॉ भीम राव अंबेडकर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

में केन्द्र में श्री नरेन्द्र मोदी की अगुवाई में कार्यरत भाजपा सरकार ने प्रेस पर अघोषित प्रतिबंध लगा रखा है जिससे मीडिया सरकार के विरोध का धर्म भूल चुकी है और सरकार के समर्थन में खबरों को प्रसारित कर रही है।

रवीश कुमार से विपरीत विचार रखने वाले मीडिया जानकारों और प्रख्यात पत्रकारों को कहना है कि रवीश कुमार का आरोप बेबुनियाद है और उनके द्वारा मीडिया को गोदी मीडिया कहना किसी खास मानसिकता से ग्रसित होकर मीडिया पर आरोप जड़ने का मसला है।

आपातकाल में प्रेस पर प्रतिबंध लगा था और सरकारी अंकुश के कारण प्रेस की स्वतंत्रता दम तोड़ने लगी थी। वर्तमान समय में प्रेस की स्वतंत्रता को सरकार द्वारा सीमित करने संबंधी कोई कानून नहीं बनाया गया है और न ही किसी तरह का सेंसरशिप लागू किया गया। न ही किसी समाचार पत्र, टीवी न्यूज चैनल और सोशल मीडिया को सेंसरशिप के दायरे में लाया गया।

इसी मद्देनजर आपातकाल के दौरान मीडिया पर सेंसरशिप और उस दौरान मीडिया को खबरें छापने और प्रसारित करने में आ रही दिक्कतों को लोकवाणी पत्रिका के प्रकाशन की कहानी के माध्यम से शोध के विषय को संपुष्ट किया जा रहा है।

साहित्य समीक्षा

आपातकाल के दौरान प्रेस पर प्रतिबंध के सरकारी प्रयासों पर कई साहित्य प्रकाशित किये गये हैं। आपातकाल में सरकार द्वारा प्रेस पर किये जुल्मों की गाथा और आपातकाल में प्रेस पर सेंसर और लोकवाणी पत्रिका के प्रकाशन पर शोध पत्र के लिए पटना विश्वविद्यालय के प्रोफेसर रमाकांत पाण्डेय कृत पुस्तक जेपी आंदोलन का सच, जेपी आंदोलन के रणनीतिकार और प्रख्यात पत्रकार राम बहादुर द्वारा लिखित पुस्तक शाश्वत विद्रोही आचार्य जे बी कृपलानी, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया द्वारा प्रकाशित पुस्तक लोकराज के लोकनायक(जेपी की जीवनी) और प्रख्यात पत्रकार बलबीर दत्त द्वारा लिखित पुस्तक इमरजेंसी का कहर और सेंसर का जहर को मुख्य आधार बनाया गया है।

शोध का उद्देश्य

- आपातकाल के दौरान प्रेस की स्वतंत्रता को बाधित और खंडित करने हेतु सेंसरशिप का कैसा-कैसा रूप-स्वरूप देखने को मिला, इसकी प्रकाशना करना।
- आपातकाल के दौरान प्रेस की स्वतंत्रता को बाधित और खंडित करने वाले कानूनों का प्रभाव किन-किन मीडिया संस्थानों पर कैसा रहा था, इसका अध्ययन करना।
- आपातकाल के दौरान छात्र आंदोलन की खबरों को प्रकाशित कर लोगों तक पहुँचाने के लिए शुरू किये गये लोकवाणी पत्रिका को किन-किन कठिनाइयों से गुजरना पड़ा, इसका प्रकाशना करना।

शोध प्रश्न

उद्देश्यों तक पहुँचने के लिए निम्नांकित सवालों के जबाव खोजने की कोशिश की गई है-

- क्या आपातकाल में प्रेस की स्वतंत्रता को सीमित और खंडित करने के तदर्थ कोई सेंसरशिप की घोषणा हुई थी?
- आपातकाल के दौरान मीडिया के किन-किन स्वरूपों पर प्रतिबंधात्मक कार्रवाई हुई?
- आपातकाल में मीडिया पर लगाये गये सेंसरशिप ने भारतीय लोकतंत्र के मूल्य-सिद्धांत खासकर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर क्या असर डाला?
- आपातकाल के दौरान लोकवाणी पत्रिका के प्रकाशन में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा?

परिकल्पना

लोकतंत्र में लोकतांत्रिक मूल्यों एवं मर्यादाओं को सुरक्षित व निष्कलंक रखने और जनता की भागीदारी को लोकतंत्र में सुनिश्चित करने के लिए प्रेस की आवाज को बुलंद किया जाना आवश्यक होता है। लोकतांत्रिक देशों में जनता की सीधी आवाज बनती है- मीडिया क्योंकि जनसंचार के माध्यम ही जनता की आवाज को सरकार तक पहुँचा पाते हैं। आपातकाल में प्रेस पर सेंसर लगाकर जनता की आवाज को दबाने का सरकारी प्रयास हुआ ताकि भारत में लोकतंत्र की जड़ों को कमजोर किया जा सके।

आलेख

भारत के स्वतंत्रता संग्राम को निष्फल करने के लिए औपनिवेशिक सत्ता ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को खत्म कर दिया था। न तो व्यक्तिगत तौर पर बोलने की आजादी थी, न ही सामूहिक यानी सभा-संगठन बनाकर बोलने की स्वतंत्रता थी। प्रेस की स्वतंत्रता को हाशिये पर डाल दिया गया था या यूं कहा जाए कि प्रेस को पंगु बनाकर रखा गया था।

स्वतंत्रता संग्राम को नेतृत्व प्रदान करने वाले लगभग सारे स्वतंत्रता सेनानियों द्वारा जनमत तक अपनी बात, नीति, सिद्धांत और स्वतंत्रता संग्राम की रणनीतियों को पहुँचाने के लिए अखबार-पत्रिकाओं का संपादन और प्रकाशन किया जाता था किन्तु ब्रिटिश हुकुमत द्वारा न केवल उन पर कड़ा नियंत्रण रखा जाता था बल्कि जनमत की बात को उठाने पर प्रतिबंध लगा दिया था। औपनिवेशिक सत्ता अपनी सोंच और अपनी संस्कृति को भारतीय जनमानस पर थोपने के लिए प्रेस की आजादी को छिन कर अपनी हुकुमत के गुण-गान करने यानी मीडिया की भाषा में पत्रकारिता की जगह चाटुकारिता करने को बाध्य किया जाता था। इतना के बावजूद भी भारतीय प्रेस ने कष्ट सहकर स्वतंत्रता संग्राम के मिशन को आगे बढ़ाने का काम किया था।

वर्नाकुलर प्रेस एक्ट, 1878 के द्वारा स्थानीय भाषाओं में प्रकाशित पत्र-पत्रकाओं पर कड़ा प्रतिबंध लगाया था। इस एक्ट की मार से बचने के लिए अमृत बाजार पत्रिका ने रातों-रात आंग्ल भाषा में प्रकाशन प्रारंभ किया था जबकि पहले यह बंग्ला भाषा में छपती थी।

पत्रकारीय धर्मों को निर्वहन करते हुए बाल गंगाधर तिलक पहले स्वतंत्रता सेनानी बने जिन्हें 1882 में सत्ता की प्रखर आलोचना के लिए न केवल छह महीने की सजा सुनायी गयी थी बल्कि उनके पत्र केसरी को प्रतिबंधित कर दिया गया था। बंगाल विभाजन के बाद 1906 में भूपेन्द्र नाथ दत्त और बंकिम चंद्र घोष द्वारा प्रकाशित पत्रिका युगांतर को ब्रिटिश हुकुमत ने प्रतिबंधित कर दिया था ताकि भारत को स्वतंत्र कराने के लिए राष्ट्रवादी युवाओं के बीच विचारों के प्रवाह के जनसंचार को रोका जा सके। साथ ही, अलीपुर षड्यंत्र में फंसाकर में दत्त और घोष को आजीवन करावास की सजा सुनायी गयी थी।

औपनिवेशिक भारत में प्रेस पर प्रतिबंध की चिंताओं ने संविधान निर्माणकर्ताओं को स्वतंत्र भारत में प्रेस को पूरी स्वतंत्रता प्रदान करने की चाहत पैदा की थी। इसका फलाफल यह रहा कि स्वतंत्र भारत के संविधान के भाग-3 में मूल अधिकारों के तहत अनुच्छेद-19 में स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान किया गया जो निम्नांकित है-

- वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार
- बिना शस्त्रों के शांतिपूर्वक सभा करने का अधिका
- सहाकारी संस्था, संघ और संगठन निर्माण करने का अधिकार
- भारत के किसी भी हिस्से में स्वतंत्र विचरण का अधिकार
- भारत के किसी भी हिस्से में रहने और निवास करने की स्वतंत्रता
- जीविकोपार्जन के लिए जीविका, वृत्ति, व्यापार और व्यसाय की स्वतंत्रता

अनुच्छेद-19(1)(अ) में विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के तहत प्रेस की स्वतंत्रता को भी मूल अधिकार के अंतर्गत रखा गया है।

स्वतंत्र भारत में 1975 में राष्ट्रीय आपातकाल घोषित किया गया और तमाम नागरिक स्वतंत्रताओं समेत प्रेस की स्वतंत्रता को पूरी तरह प्रतिबंधित(सेंसर) कर दिया गया था। खबर, विचार और सूचनाओं के प्रसार पर सरकार का नियंत्रण हो गया था और सेंसरशिप के द्वारा प्रेस की स्वतंत्रता पूरी तरह छिन ली गयी थी।

पुस्तक इमर्जेंसी का कहर और सेंसर के जहर में लेखक बलबीर दत्त लिखते हैं कि आपातकाल के साथ सेंसरशिप लागू करने के विरोध में कुछ अखबारों ने अपने संपादकीय-अग्रलेख का स्थान सामान्य बॉर्डर लगाकर खाली छोड़ दिया गया था, उनसे भी सरकार ने कैफियत तलब की थी कि ऐसा उन्होंने क्यों किया,

जबकि ब्रिटिश शासनकाल में भी कई बार राष्ट्रवादी अखबार ऐसे प्रसंग उपस्थित होने पर यही किया करते थे। संपादकीय का स्थान रिक्त छोड़ देने वाले अखबारों में इंडियन एक्सप्रेस, फाइनेंशियल एक्सप्रेस, अमर उजाला, नई दुनिया, दैनिक जागरण, राँची एक्सप्रेस, मेन स्ट्रीम आदि अखबार थे। दैनिक जागरण का संपादकीय इन शब्दों के साथ खाली छोड़ दिया गया था-

"नया लोकतंत्र लागू।"

दैनिक जागरण का यह विरोध सरकार को नागवार गुजरा और सरकार ने मालिक-संपादक पूर्णचंद्र गुप्ता और उनके साथ उनके दोनों पुत्रों नरेन्द्र मोहन और महेन्द्र मोहन को भी गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया था।

वाराणसी के दैनिक गांडीव ने संपादकीय की पूरी जगह खाली न छोड़कर इंदिरा गाँधी जिंदाबाद, इंदिरा गाँधी जिंदाबाद से भर दिया था। सरकार को यह भी बर्दाश्त नहीं हुआ और उसके वयोवृद्ध संपादक भगवान दास अरोड़ा जेल की हवा खानी पड़ी थी।

बिहार में पटना से प्रकाशित उर्दू रोजाना संगम ने अपने सारे पन्ने काले कर दिये थे। उर्दू रोजाना 'संगम' का प्रकाशन गुलाम सरवर के संपादन में 1952 में प्रारंभ किया गया था। इस प्रतिष्ठित उर्दू समाचार पत्र ने आपातकाल के विरोध में 26 जून के सुबह के सुबह के अखबार को काला कर दिया। इसकी कीमत अखबार और संपादक दोनों को चुकानी पड़ी थी।

भारतीय जनसंघ समर्थित अंग्रेजी दैनिक द मदरलैंड के संपादक के आर मल्कानी को 25-26 जून की मध्य रात्रि को गिरफ्तार कर लिया गया। उनका अखबार बंद करा दिया गया।

आपातकाल में भारतीय पत्र-पत्रिकाओं पर सेंसर का प्रभाव इतना अधिक था कि किसी पत्र ने प्रसिद्ध गाँधीवादी और स्वतंत्रता सेनानी जे बी कृपलानी द्वारा प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी को लिखे पत्र को छापने की हिम्मत तक नहीं दिखाई। प्रसिद्ध पत्रकार और लेखक रामबहादुर राय ने पुस्तक शाश्वत विद्रोही राजनेता आचार्य जे बी कृपलानी में लिखा है कि आचार्य जे बी कृपलानी ने 8 जुलाई, 1975 को एक पत्र प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी को लिखा। वह पत्र इंदिरा गाँधी को मिला। पत्र में यह पूछा गया था कि क्या जयप्रकाश नारायण और मोरारजी देसाई इमरजेंसी के विरोध में जेल में आमरण अनशन कर रहे हैं। उनके स्वास्थ्य के बारे में लोग चिंतित हैं और सच जानना चाहते हैं। उन्होंने अपने पत्र में याद दिलाया कि आजादी की लड़ाई में बापू जब अनशन पर जाते थे तो सरकार रोज बुलेटिन जारी करती थी। इस परंपरा का निर्वाह हो, यह आग्रह भी उस पत्र में था। उनका पत्र किसी अखबार में नहीं छपा क्योंकि अखबार सरकार से डरते थे।

इमरजेंसी के दौरान आचार्य जे बी कृपलानी ने लेख और पत्र अखबारों को लिखे किन्तु अखबारों ने सरकार के दबाव में नहीं छापा। एक पत्र उन्होंने 30 जून, 1975 को लिखा। उसे अनेक संपादकों को भेजा।

उसमें यह याद दिलाया गया था कि आजादी से पहले भारतीय समाचार पत्रों ने अनेक कष्ट और दंड झेलकर भी अपना कर्तव्य निभाया। वह संघर्ष आजादी के लिए था। इमरजेंसी से आजादी खतरे में पड़ गई है। तब क्या अखबारों को चुप रहना चाहिए। अखबारों को तमाम खतरे मोल लेकर बताना चाहिए कि इमरजेंसी के दौरान क्या हो रहा है। उन्होंने यह सलाह दी कि प्रेस सलाहकार परिषद् और संपादक सम्मेलन की समीक्षा बैठ होनी चाहिए। उसमें इसका लेखा-जोखा लेना चाहिए कि इमरजेंसी के दौरान क्या हो रहा है और कैसे अपनी आजादी सुरक्षित रखी जा सकती है। इस पत्र को किसी संपादक ने नहीं छापा।

आपातकाल में लोकवाणी पत्र की छपाई की कहानी प्रेस के सेंसर की दर्दनाक कहानी है जिसे राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा प्रकाशित पुस्तक लोकराज के लोकनायक में जगह दी गई है।

25 जून,1975 की रात्रि को देश में आपातकाल लागू कर दिया गया। इस स्याह रात्रि को लोकतंत्र का गला घोंटने के सारे इंतजामात कर लिये गये थे। देश भर में प्रेस को प्रतिबंधित कर दिया गया। इन विपरीत हालातों में भी 26 जून,1975 से पटना में लोकवाणी दैनिक का प्रकाशन पन्नालाल की कम्पोजिंग की कृपा और उनका उमा के संग इश्क की कहानियों के आस-पास के ताना-बाना पर आधारित होकर प्रकाशन का सौभाग्य हासिल कर सका। इस ताने-बाने को बुनने में महती योगदान था- अशोक सिंह का जो आज भी पटना में लोकवाणी प्रेस चलाते हैं और राजनीति से कोसों दूर हैं।

18 मार्च,1974 को प्रदेश भर से आये विद्यार्थियों के द्वारा बिहार विधान सभा को घेर लिया गया था। 17 मार्च की रात्रि से ही पटना में विद्यार्थियों का आगमन शुरू हो गया था। इन विद्यार्थियों के खाने का इंतजाम पटनावासियों से स्वैच्छिक आधार पर 'हर घर से रोटी' संग्रहण कर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के कार्यकर्ताओं द्वारा किया गया था। बिहार विधान सभा घेराव करने वालों में मैं(अशोक सिंह) भी एक था। जैसे ही पुलिस ने गोली और अश्रुगैस के गोले दागने शुरू किये। मैंने आर-ब्लॉक को पार कर रेलवे लाइन के किनारे का रास्ता पकड़ा और वहां से चलता हो लिया। वहां से लोहानीपुर होते हुए खजांची रोड के कोने पर स्थित अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के कार्यालय पहुंच गये।

कार्यालय के बगल में ही फागु राय(स्वतंत्रता सेनानी) के मालिकत्व में सिद्धनाथ प्रेस चलता था जिसका संचालन फिलवक्त उनके पुत्र सिद्धनाथ राय कर रहे थे। विद्यार्थी परिषद के कार्यालय में डर से रुकने की हिम्मत नहीं हो रही थी क्योंकि यह कार्यालय पुलिस के निशाने पर था। मैं बगल की चाय दुकान पर थकान मिटाने और भययुक्त मन को भयमुक्त बनाने के लिए चाय की चुस्कियां लेने लगा। तब एक प्याली चाय 10 नया पैसे की मिलती थी। उसी चाय दुकान पर सिद्धनाथ राय भी कुछ ही समय बाद पहुंच गये। मुझे देखते ही उन्होंने कहा, "अशोक भाई, आज विधान सभा के पास विद्यार्थियों के द्वारा कुछ हुआ है। हमलोगों को भी कुछ करना चाहिए। क्यों न हम लोग एक न्यूज बुलेटिन निकाल दें? पटना के लोगों को सही-सही जानकारी तो कम से कम मिल ही जाएगी।"

मैंने सिद्धनाथ से कहा, "भाई, हमलोगों के न्यूज बुलेटिन को पुलिस की डर से छापेगा कौन?" "अरे, इ क्या बात हुई! आप न्यूज बना दीजिए और मैं अपने प्रेस में छाप दूंगा", सिद्धनाथ ने मुझसे कहा।

विद्यार्थी परिषद के हम तीन-चार लोगों ने खबर बना दी और सिद्धनाथ ने 'छात्र संघर्ष' नाम से बुलेटिन बनाकर छाप दिया। 20 मार्च को अहले सुबह 'छात्र संघर्ष न्यूज बुलेटिन' की 1000 प्रतियां छपकर निकली जिसका मूल्य रखा गया था- 10 नया पैसा। सिद्धनाथ ने खुद और अपने प्रेस के आदमियों के माध्यम से साइकिल से पूरे पटना शहर में न्यूज बुलेटिन पहुंचाने के काम को अंजाम दिया। अब प्रतिदिन यह न्यूज बुलेटिन छपने लगी और इसका प्रसार बढ़कर 5000 प्रतियां प्रतिदिन हो गई।

लेकिन जैसे ही 25 जून को राष्ट्रीय आपात की घोषणा कर दी गई, वैसे सिद्धानाथ प्रेस ने न्यूज बुलेटिन छापने से हाथ उठा लिया। अबतक समाचार संकलन और प्रिंटिंग का अनुभव हम हासिल कर चुके थे।

26 जून को रात्रि 8 बजे का समय था। छात्र संघर्ष न्यूज बुलेटिन से जुड़े हमलोग, राम बहादुर राय, रवीन्द्र केशरी(तत्कालीन सायंस कॉलेज,पटना में डोमोस्ट्रेटर व विद्यार्थी परिषद से संबद्ध), गोविंदाचार्य, सरयू राय और पटना विश्वविद्यालय के तीन प्रोफेसर चंद्रकिशोर पांडेय 'निशांतकेतु', डॉ अमरकांत सिंहा तथा शैलेन्द्रनाथ श्रीवास्तव छिप-छिपाकर रानीघाट गंगा के तट पर पहुंचे। वहीं गंगाघाट की सीढ़ियों पर हम सभी लोग बैठ गये। सबने अपना नाम और वेश बदल रखा था। वहीं तय हुआ कि अब आपातकाल के दौरान अपनी स्वतंत्र व्यवस्था में एक न्यूज बुलेटिन छापा जाएगा। न्यूज बुलेटिन के नाम पर चर्चा चली, तो प्रो.चंद्रकेतु पांडेय 'निशांतकेतु' ने लोकवाणी नाम से दैनिक बुलेटिन निकालने का प्रस्ताव रखा जिस पर सर्वसम्मति बनी। अब हम विश्वविद्यालय के सम्मानित प्रोफेसर के कुशल नेतृत्व व संपादकत्व में लोकवाणी दैनिक न्यूज बुलेटिन निकालने की दिशा में संकल्पित हुए। बाधा केवल प्रिंटिंग की आ रही थी किंतु पूर्व के अनुभवों व छात्र संघर्ष न्यूज बुलेटिन में सक्रिय सहभागिता के कारण प्रिंटिंग का दायित्व मुझे दिया गया।

प्रिंटिंग के लिए प्रेस से संपर्क साधने में लगा किन्तु कोई भी बड़ा प्रेस पुलिस की डर से तैयार नहीं हुआ। मैंने छोटे और कम पूंजी वाले प्रेस का रुख किया क्योंकि मुझे विश्वास था कि पैसे के लोभ में हमारी मदद ऐसे ही लोग कर सकते थे। हम इसी तलाश में अमरुदी गली, मछुआटोली,पटना में जयहिंद प्रेस पहुंचे। प्रेस के मालिक शैलबिहारी चौधरी से मेरी मुलाकात हुई। उन्होंने कहा कि अगर आप मैटर कम्पोज कर मुझे दे देंगे, तो मैं रात्रि में आपका न्यूज बुलेटिन छाप दिया करुंगा और अहले सुबह आपको छपी हुई सामग्री खुद ले जाना होगा।

अब केवल कम्पोजिटर की तलाश बाकी रह गई थी। जयहिन्द प्रेस में ही एक पन्नालाल नाम के कम्पोजिटर काम किया करते थे। पन्नालाल ने बताया कि अपने प्रेस मालिक की नजरों से बचाकर रात्रि में आपका मैटेरियल कम्पोज कर दिया करुंगा किन्तु मेरी भी एक शर्त माननी होगी। मेरे कम्पोजिंग के कार्य के

लिए एक कमरा जयहिंद प्रेस के सामने के मकान में लेना पड़ेगा। मुझे घोर आश्चर्य हुआ कि पन्नालाल मालिक की नजरों से बचकर कम्पोजिंग करने पर सहमत हुए हैं किन्तु कम्पोजिंग के लिए किराये का कमरा मालिक के सामने वाले मकान में लेने की शर्त रख रहे हैं। मैं कम्पोजिंग के लिए कहीं दूर किराये पर कमरा लेने के लिए अड़ा था जबकि पन्नालाल वहीं के लिए अड़े थे। खैर, बात खुली। पन्नालाल ने बताया कि सामने वाले मकान में मेरी प्रेमिका उमा रहती है। अगर आप यहां कम्पोजिंग के लिए किराये पर कमरा ले लेते हैं, तो मेरा इश्क जल्दी ही परवान चढ़ जाएगा और बीच-बीच में नयन मटके के साथ कम्पोजिंग के लिए रातजग्गा भी आसान हो जाएगा। पन्नालाल की शर्तों पर हम राजी हो गये। अब कम्पोजिंग पन्नालाल के भरोसे और प्रिंटिंग जयहिन्द प्रेस में। दो पन्ने की लोकवाणी की प्रतिदिन 2000 प्रतियां छपने लगी। यह सिलसिला लगभग महीना दिन तक चला।

हुआ यूं कि उसी अमरुदी गली में सीपीआई का दफ्तर(अजय भवन) हुआ करता था। इन लोगों को हमारे प्रिटिंग की जानकारी मिल गई। इनकी सूचना पर जयहिन्द प्रेस में छापेमारी हुई। प्रेस सील कर दिया गया और प्रेस मालिक शैलबिहारी चौधरी को जेल में डाल दिया गया। खैर, कम्पोजिटर पन्नालाल पर पुलिस को तनिक भी शक नहीं हुआ। पन्नालाल ने मुझे भरोसा दिलाया कि अशोक बाबू, आप कम्पोजिंग मशीन की व्यवस्था कर लीजिए तो मैं कम्पोजिंग कर दिया करुंगा।

खैर, हमने ठिकाना भी बदला और नाम भी बदल लिये। अब मैं 'विजय' छद्मनाम से जाना जाने लगा और बढ़ी जुल्फों के साथ लुंगी-गंजी वाले लिबास में मद्रासी का वेश-भूषा धारण कर लिया था। ...और हिंदी को भी हकलाकर मद्रासी स्टाइल में बोलने लगा था। मुसल्लहपुर हाट में तब जगदीश सिंहा का चार कमरे का खपरैल मकान हुआ करता था जिसमें तीन कमरे हमने और नंदकिशोर यादव(बिहार सरकार में मंत्री रहे हैं) ने लोकवाणी के काम के लिए किराये पर ले लिये। बचे एक कमरे में समाहरणालय के मुंशी जी परिवार के साथ रहा करते थे। किराये पर लिये गये तीन कमरे में से एक कमरा पन्नालाल को कम्पोजिंग के लिए, एक कमरा नंद किशोर यादव,श्याम सिंह सहाय और मेरे लिए तथा तीसरे कमरे में आंदोलन की सामग्रियां व लोकवाणी की मुद्रित प्रतियां रखी जाती थी। संयोग ऐसा था कि अंतिम के दो कमरे जिसमें मैं और सामग्रियां रखी जातीं थी, एक-दूसरे से जुड़े हुए थे और एक का दरवाजा दूसरी तरफ भी खुलता था। कुछ दिनों के बाद पन्नालाल उमा को भगाकर उसी कमरे लाये और दाम्पत्य जीवन की शुरुआत कर दी। इलाहाबाद से प्रयाग टाइप फाइंड्री से कम्पोजिंग मशीन की खरीददारी तकरीबन तीन हजार रुपये में की गई। कम्पोजिंग की व्यवस्था के बाद प्रेस की तलाश की गई। लोकवाणी के मुद्रण के लिए दीघा स्थित सहयोगी प्रेस के मालिक रात में प्रिंट करने को तैयार हो गये। प्रेस मालिक का बेटा रात्रि प्रथम पहर में कम्पोजिंग प्लेट मुसल्लहपुर हाट से छिप-छिपाकर दीघा ले जाया करता था और रात्रि के अंतिम पहर में लोकवाणी की मुद्रित प्रतियां मुसल्लहपुर हाट पहुंचा दिया करता था। यह सिलसिला 13 जनवरी,1976 तक चला।

सी.आई.डी की सूचना पर मुसल्लहपुर हाट में 14 जनवरी को तकरीबन 12 बजे पुलिस का छापा पड़ा। पन्नालाल और उनके बहनाई जो उस दिन दही-चुड़ा लेकर आये थे, पुलिस के गिरफ्त में आ गये। पुलिस ने कम्पोजिंग मशीन जब्त कर लिया। उमा अकेली रह गईं और पन्नालाल जेल में डाल दिये गये जबकि पन्नालाल के बहनोई को पुलिस ने थाने से छोड़ दिया। संयोग ऐसा था कि 13 जनवरी को चूड़ा-दही खाने नंद किशोर यादव खाजपुरा स्थित अपने घर चले गये थे जबकि श्याम सिंह सहाय लखनऊ। मैं(अशोक सिंह) 14 जनवरी को सुबह-सुबह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नगरकार्यवाह लखन लाल श्रीवास्तव से मिलने महेन्द्रू,पटना निकल गया था। जब मुसल्लहपुर हाट लौटा, तो देखा कि पुलिस की छापेमारी उस मकान में हो रही है जहां हमारा ठिकाना था। अब मैं मूकदर्शक बनकर दूर से पुलिस की छापेमारी को देखने लगा और मन ही मन हनुमान जी का स्मरण भी करने लगा। हे बजरंगबली! किसी तरह आंदोलन की मुद्रित प्रतियों को पुलिस की नजर से बचा लीजिए। इसी बीच नंद किशोर यादव भी घर से लौटकर मुसल्लहपुर हाट पहुंच चुके थे और अपने ठिकाने पर पुलिस की छापेमारी को दूर से देख रहे थे। हमदोनों की नजरें मिलीं और दोनों वहां से पास में स्थित बजरंगबली के मंदिर चले गये और भक्ति की शक्ति से पुलिस की कार्रवाई को रोकने की गुहार बजरंगबली से लगाने लगे। हमदोनों ने एक योजना बनायी। एक ने सीपीआई का कार्यकर्ता बनकर पब्लिक पीसीओ से सुल्तानगंज थाने को रात्रि में फोन किया कि सुल्तानगंज थाने के पीछे आंदोलन की समाग्रियां छापी जा रही है, तो दूसरे ने पीरबहोर थाने को फोन कर सूचना दे डाली कि भिखना पहाड़ी में आंदोलन की सामग्रियां छापी जा रही हैं ताकि रात्रि में अपनी रणनीति को अंजाम तक पहुंचाने के दौरान दोनों थाने की पुलिस यूं ही उलझी रहे।

शाम 7 बजे हमदोनों मुसल्लहपुर हाट लौटे आये। वहां हमने देखा कि एक हवालदार और दो सिपाही घर की रखवाली में डेप्यूट हैं। हमने किरायेदार मुंशीजी को किसी से खबर भिजवाया। मुंशीजी माध्यम बने और हवालदार को यह समझाने में सफल रहे कि उधर के दो कमरे में दो विद्यार्थी रहते हैं, क्यों उनके पचड़े में उलझाया जाए। कुछ रकम लीजिए और उन्हें सामान खाली कर रातों-रात जाने दीजिए। प्रति खेप 150 रुपये पर हवालदार साहब मान गये जबकि मुंशी जी ने 300 रुपये खेप का हिसाब सुनाया। दो खेप में माथे पर सामान को धीरे से ढ़ो लेने की बात तय हुई थी। सामग्रियां कोई 8-9 क्विंटल थी। एक साथ मैं और नंद किशोर यादव ने बोरियां भरी और लगभग 80 किलोग्राम आंदोलन की सामग्रियों को कुछ दूरी पर स्थित नर्सिंग मेहता के प्याज गोदाम में जगह धरा दिया। जब जैसे ही हम दोनों तीसरे खेप के लिए पहुंचे, हवलदार साहेब कुड़के। फिर सीधे 200 रुपये प्रति खेप पर मामला तय हुआ और हमदोनों जल्दी-जल्दी रात्रि 2 बजे तक सामग्रियां ढोते रहे। इधर, भूख के मारे जान निकली जा रही थी। मुंशी जी कृपादृष्टि बरसी और उन्होंने हमदोनों को दो-दो रोटियां और खेसारी का साग खिलाया। खैर, अतृप्त क्षुधा किन्तु तृप्त मन के साथ रात्रि में सोने के ठिकाने की तलाश में थोड़ी देर उलझा रहा। लेकिन अंत में खजांची रोड के किनारे पर स्थित विद्यार्थी परिषद के कार्यालय को हमदोनों ने रात्रि विश्राम का ठिकाना बनाया।

अब कम्पोजिंग और प्रिंटिंग दोनों का नया ठिकाना दीघा का सहयोगी प्रेस हो गया। यहां यह काम लगभग छह-सात महीने तक चला किन्तु सीआईडी रिपोर्ट पर पुलिस ने छापा मारा और प्रेस की सामग्री सहित प्रेस के मालिक और बेटे को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। पुलिस अब लोकवाणी की प्रिटिंग से तालुकात रखने वाले 'विजय' की खोज में लग गई। लेकिन पुलिस के तमाम उत्पीड़न के बावजूद भी प्रेस मालिक के बेटे ने न तो मेरे ठिकाने का खुलासा नहीं किया और न ही मेरी पहचान बतायी।

इसके बाद हमलोगों ने 'लोकवाणी' की प्रिटिंग और कम्पोजिंग का नया ठिकाना आलमगंज थाने के गेट के सामने एक मकान को बनाया। इस ठिकाने की जानकारी हमारे एक कम्युनिस्ट मित्र को लग गई। उसने पुलिस को सूचित कर दिया। पुलिस छापेमारी के लिए पहुंची,तब हम और सरयू राय वहीं थे। हमदोनों ने तेजी दिखायी और पूरे विश्वास के साथ निकलकर थाने की ओर चल दिये। इससे पुलिस दिग्भ्रमित हो गई और हमदोनों गिरफ्तारी से बचने में कामयाब हो गये। लोकवाणी पूरे आपतकाल के दौरान ठिकाने बदल-बदल कर छपती रही और विद्यार्थियों समेत तमाम पटनावासियों को गोपनीय तरीके से सरकार की कारिस्तानियों से रू-ब-रू कराती रही। मुझे आज भी याद है कि चंद्रकांत पांडेय 'निशांतकेतु' ने एक आलेख लिखा था- "इंदिरा का हिटलरी संविधान"। जब भी इस आलेख के शब्द मेरे जेहन में आज भी आते हैं तो लहु गर्म होने लगता है और आक्रोश से रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

पटना में आपाताकाल में लोकवाणी प्रेस और अशोक सिंह के महत्ती प्रयासों को का उल्लेख लेखक प्रो रमाकांत पाण्डेय ने अपनी पुस्तक जे.पी. आंदोलन के सच में किया है। उन्होंने लिखा है कि पटना में लोकवाणी प्रेस के अशोक सिंह को भूमिगत रहकर पर्चा छापने और बांटने तथा बंटवाने की जिम्मेवारी दी गयी थी।

पुस्तक इमरजेंसी का कहर और सेंसर के जहर में लेखक ने उल्लेख किया है कि गुप्त पत्रिकाओं में संभवतः सर्वाधिक प्रचारित-प्रसारित पत्रिका थी- लोकवाणी। इसके मुख पृष्ठ पर पत्रिका के नाम के नीचे लिखा रहता था- "लोकसंघर्ष समिति, बिहार का मुख पत्र"।

लोकवाणी पत्रिका के मास्टहेड पर दायीं ओर स्लोगन लिखा होता था-
"जय को कर लक्ष्य चलेंगे हम,
अरिदल का दर्प दलेंगे हम।"

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में प्रख्यात पत्रकार रवीश कुमार का यह आरोप बेबुनियाद दिखता है कि भारतीय प्रेस पर अघोषित इमरजेंसी के तहत सरकार ने सेंसर लगा रखा है और प्रेस की स्वतंत्रता और पत्रकार की पवित्रता व पत्रकारीय धर्म खतरे में है जबकि संचार क्रांति के दौर में मीडिया के कई माध्यमों से सरकार के विरूद्ध खबरों का प्रवाह और खबरों की तह तक पड़ताल की स्थिति देखी जा रही है। स्वेच्छा से चैनल त्यागने के बाद रवीश कुमार, पुण्य प्रसून वाजपेयी, अभिसार शर्मा, अजीत अंजुम जैसे

पत्रकार यूट्यूब चैनल पर दिन-रात सरकार के खिलाफ खबरों को आग की तरह उगल रहे हैं। अगर वर्तमान में मीडिया पर अघोषित इमरजेंसी का दमन चक्र होता तो उन्हें और सारे पत्र-पत्रिकाओं को खबरों के प्रकाशन की आजादी नहीं होती।

इमरजेंसी के दौरान कई पत्रिकाएं सेंसर के कारण बंद की गई। कहा जाता है कि लोकतांत्रिक देश में व्यंग्य चित्रकार जनता की आवाज को बुलंद कर मीठे विरोधी दल का काम करता है। इमरजेंसी लगने के बाद देश की प्रसिद्ध व सबसे पुरानी पत्रिका शंकर्स वीकली ने 1 सितंबर, 1975 को अपना प्रकाशन बंद कर दिया। इस काल में टाइम्स ऑफ इंडिया में प्रकाशित होने वाले लक्ष्मण के कार्टून कुंद पर गई थी क्योंकि प्रेस और मीडिया के लोगों पर सेंसर की पैनी नजर होती थी।

संदर्भः-

1. दत्त, बलबीर. (2020). *इमरजेंसी का कहर और सेंसर का जहर*. दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. पृ. 157, 162, 350-351
2. पाण्डेय, रमाकान्त. (2017). *जे.पी. आंदोलन का सच*. पटनाः वातायन प्रकाशन. पृ. 94
3. राय, रामबहादुर. (2013). *शाश्वत विद्रोही राजनेता आचार्य जे बी कृपलानी*. नई दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया. पृ. 207, 209
4. कुमार, राकेश (2022). *लोकराज के लोकनायक*. नई दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया. पृ. 158-164

Tracing the Rich Heritage: The Evolution of Kokborok Drama in Tripura

BARNA RANI JAMATIA*
barnajamatia@gmail.com

Abstract:
This research article delves into the dynamic evolution of Kokborok drama in Tripura, India, shedding light on its journey from traditional folk performances to contemporary theatrical expressions. Kokborok, the indigenous language of the Tripuri community, possesses a rich cultural heritage that is deeply intertwined with various forms of performing arts. Through an extensive analysis of historical records, oral traditions, and contemporary practices, this study seek to chronicle the development and transformation of Kokborok drama, emphasizing its cultural significance, thematic variations, and socio-political relevance.
Keywords: Kokborok drama, Tripura, indigenous language, culture evolution, folk performances, contemporary theatre.

1. Introduction:

The indigenous people of Tripura, India, have nurtured a distinctive cultural legacy rooted in their language, Kokborok, which encompasses a wide spectrum of traditional and contemporary artistic expressions. One of the prominent facets of this cultural heritage is Kokborok drama, which has evolved over time while preserving its unique characteristics. This research article investigates the historical progression of Kokborok drama, elucidating its role as a cultural mirror reflecting the evolution of the Tripuri society.

2. Cultural Context:

Kokborok drama is deeply embedded in the cultural fabric of the Tripuri people, serving as a means of communication, entertainment, and social commentary.

* **Guest Faculty, Department of Kokborok, MBB college, Agartala, Tripura**

Traditionally, these dramas were performed during festivals, rituals, and special occasions, often portraying mythological stories, moral lessons, and communal values. The socio-cultural context in which these performances took place played a pivotal role in shaping the themes, narratives, and aesthetics of Kokborok drama.

The historical incidents and events could be recalled into the eyes of society by means of drama. The culture and tradition of indigenous people of Tripura is almost everywhere base on Jhum cultivation. As a result, maximum dramas were almost related with the ancient culture of the society. For example Khumpui, Kuchuk Hasikam, Nobar domsani kothoma, Swkal, these kinds of drama were played base on the culture, tradition and behaviour of the people. In order to develop and progress the society of indigenous people dramas must be considered as one of the vital tools.

3. Evolution and Adaptation:

Over the years, Kokborok drama has undergone significant evolution and adaptation in response to changing societal dynamics. The influence of modernity, urbanization, and globalization has led to the incorporation of new themes, styles, and techniques in Kokborok drama. The transition from open-air performances to stage productions in theatres has facilitated experimentation and innovation, allowing the art form to remain relevant and engaging for contemporary audiences.

As per the history of drama in Kokborok, it was found that the origin of drama was through Jatra. As the wave of drama hover the language of Kokborok from outsider, eventually the Jatra was transformed into drama. The people of Tripura mingle with Bengali people since long time ago, hence their culture, and lifestyle has been somehow grafted in Tipra's society. Moreover, the Bengali language was also entangled with Kokborok language into some extent. This process of grafting of their culture in the society was through ‘Gainpala’, meaning ‘playing of Drama’. The drama or Gainpala had taken shape in Bengali language was due to the adoption of their culture. Moreover the culture, language and literature all together were practice by the people of Tripura as a result they became saturated in their own language as well as in culture. Further, it was known that even the royal families and King were indeed like the literature of Bengalis. The Bengali language was adopted in royal families for so long time,

eventually it was considered as royal language, therefore it is also believed that the lifestyle too got influence through Gainpala. In The history of Tripura the first drama which was performed by the Bengali were Ramayan, Raban Bad taken from Mahabharat, Sita Haran, Tarunisen bad all these were performed based on honoring the gods and their worship.

4. Themes and Narratives:

The thematic content of Kokborok drama has evolved to reflect not only traditional values and cultural narratives but also contemporary issues and concerns. While mythological stories and legends remain a vital component, modern Kokborok drama addresses topics such as identity, cultural preservation, socio-economic challenges, and political discourse. This transformation highlights the adaptability of Kokborok drama in addressing the evolving aspirations of the Tripuri community. Some of the dramas which contribute towards preserving our identity and culture are dramas like Selersa, Thwini-phota etc. These dramas were highly appreciated even by the society and people. Unfortunately, these dramas were not written in booklet as a result people could not see and perform now. After long year the first written drama was introduced that is 'Egiye cholo' written by Sudhanwa Debbarma in 1948. This very drama was first written in kokborok. The drama was also written in both the languages kokborok and Bangali. Even the performers also performed in both dialects. This drama was about the movement raise against the evil activities. The second written drama was 'Porikhit Bidruho'. This drama was also written all about the riot made by Jamatia's community against the system set up by the King. This drama was not performs, so it was not possible for people to see it. However it is written in kokborok language. After this drama was successfully written subsequently in 1947 Indian movement, world war-II and in1964-65 Pakistan and India war had begun. During that period Tripura also somehow affected by the War because Tripura had already merged with India in 1949. In such a situation like this it was found that only few dramas were written and meanwhile some of the writers were compelled to distance themselves from writing. In the year 1979-71 the writing of drama was again restored amongst the youth and in 1973 a remarkable drama name "Lamani homchang" was written by Alindralal Tripura. The drama was also displayed on the date 11th October in Rabindra Satabasiki Bhaban

at evening 6 pm. This theatre was the first proscenium. Later on in the year 1974 a drama called 'Kalijuk' was written by Jagath Basi Jamatia and also in 1975 a drama called 'Thwi phota' was written by Subudlal Jamatia. A drama 'Bengswnal' also written in the 1974 by Shymalal Debbarma.

Unfortunately due to sudden changed in Tripura political scenario and riot break out in 1980, there was a silence period in writing literature for few year among the native people. Eventually in 1983 the drama name 'Nokbar Domsani kothoma' was again displayed in the palace which was initiated by Mr. Narendra Debbarma. Later on in the year 1984 'Mari' was written by Nanda Kumar Debbarma in addition to that the poem 'Kok kisa koktanghai' also written in the same year. Now a day's in the field of Literature many new dramas are also being written in viewing the present scenario and situation of the people.

5. Socio-Political Significance:

Kokborok drama has also assumed a socio-political role, enabling the Tripuri people to voice their concerns, aspirations, and struggles. As a platform for dialogue and reflection, these dramas have contributed to the preservation of indigenous identity and the assertion of cultural rights. The fusion of tradition and modernity in Kokborok drama serves as a powerful tool for community mobilization and advocacy. Drama is one of the most important aspects of literature. As a result drama can be considered as the beacon of the society. The ancient traditional custom or law of the society is highlighted through drama. In fact the drama was performed base on history, culture, places and eventually that will leads to know the roots characters of the contemporary peoples. In the literature of Kokborok, the drama 'Egiye Cholu' was written and performed base on the evil policy established during the times of kingship and this drama is base on true incidents that took place in Gulagati a west part of Tripura where the riot took place between the farmers and the king.

Furthermore, we could relate the custom and the life style of once generation by the help of drama. Following this concept the drama 'Ekalobya' which was written by eminent writer Nanda Kumar Debbarma, here he illustrated and described the believed system and intention of the society through his writing. In his drama he emphasised

how teaching and learning system was provided to the royal family and was deprived to the law class society. The boy name Ekalobya from poor family was deprived although he was excellent in learning. In this story Bishma the grandfather of Prince set up a school at mountain of Longtrai guide by the teacher called Guru Drun. He was assigned to teach the five prince or grandson of Bishma to master the art of shooting with the catapult. In the meantime the poor boy Ekalobya was inspired seeing them and begin to learning by himself and eventually he believed and considered that Drun was his master even though he didn't get any physical training from him. However, when the teacher found that the boy was so excellent and superior than his students, He began to make evil plot by asking his right hand thumb as Guru Dakshina. The innocent boy out of respect cut his thumb as a Guru Dakshina. This story shows how jealous they could be when someone excelled than his own people and The lower class people are always isolated of education and opportunities. Finally, it can be concluded that in the literature of Kokborok drama's played a huge rule to retain the history, culture and custom and eventuallyopen the eyes of the society by means of drama.

6. Contemporary Practices:

In the present day, Kokborok drama continues to thrive as a resilient art form, albeit with new challenges and opportunities. The emergence of digital platforms and the revival of interest in indigenous cultures have provided avenues for the dissemination and preservation of Kokborok drama. Artists and enthusiasts are experimenting with innovative ways to maintain the authenticity of the art form while embracing contemporary tools.

So drama is our ultimate image of the society and also the way to excelled in education. In facts through drama the joy and peace of society, the love, affection, chaos, death and reality can be established andthe people could learn the lesson and applied through this show. In his book called 'Natyasastra' Acharya Bharatmuni quoted that, ideology, literature, education and many more all these are describe and found in the drama. In one word we can say drama is a combination of many literatures. In the early days the drama was played for the entertainment purpose however in the modern days it has huge impact on imparting moral knowledge to the society, critical thinking, to let know people good and bad, character building and many more. Briefly in one word we can

say that in order to develop and progress the civilization the drama is being played and performed.

7. Conclusion:

The evolution of Kokborok drama in Tripura is a testament to the resilience and adaptability of indigenous cultural expressions in the face of changing times. From its origins in traditional folk performances to its contemporary manifestation, Kokborok drama has retained its cultural significance while responding to the evolving needs of the Tripuri community. As custodians of this rich heritage, it is essential to continue supporting and celebrating Kokborok drama as an integral part of Tripura's cultural mosaic.

REFERENCES:

Bhattacharjee, Bhibu. (2009). Ed. Tripura Theatre, *A journal on theatre, Agartala (Drama Group).* (vol.-2, issue-2, Jan- Jun08). Agartala: Bhibu Bhattacharjee, Secretary, Tripura Theatre.

Bhattacharjya, Taraknath. (2009). *Bangle natak: Udvab o Kramabikash*. Kolkata: Pragya Bikash

Chowdhury, Darshan. (1995). *Bangla Theatre-er Itihas*. Kolkata: Pustak Bipani

Chowdhuri, Suranjan Kundu. (2014). *Surang*. Agartala: Jora Publication.

Debbarma, Sudhanwa. (1950-1955). *Agiye Chalo*. Agartala: Tripura bani prakasani

Debbarma, shyamlal. (1974). *Bengswnal-2.* Bisramgonj: Tribal Students.

Debbarma, Rabindra Kishore. (2013). *Kokborok Kokrwbaini Rukungo.* Agartala: JoraPublication.

Ghosh, Deepak. (1403). *Natya Brittanta.* Kolkata: Supreme Publishers.

Ghosh, Ajit Kumar. (2005). *Bangla Nataker Itihas*. Kolkata: Dey's Publishing.

Jamatia, Nagendra. (2001). *Hakor Bisingni Nokhorbaisidi*. Agartala: Tribal Research & Cultural Institute.

Keith, A. Berriedale. (1992). *The Sanskrit Drama, in its Origin, Development Theory and Practice.* Delhi: Motilal Banarsidass Publishers Pvt. Ltd.

Lombard, Frank Alanson. (1928). *An Outline History of the Japanese Drama*. London: George Allen & Unwin.

हिन्दी सिनेमा में भजन का प्रयोग

विपिन कुमार गौड़*
vipinvinayak@ymail.com

सारांश –

भजन मुख्य रूप से साधु-संतों के द्वारा गाया जाने वाला गीत माना जाता था। जो कि देवी-देवताओं या फिर अपने आराध्य के वंदना, प्रार्थना में गाया जाने वाला गीत है। लेकिन जब हिंदी सिनेमा अस्तित्व में आया चूंकि हिंदी सिनेमा का जन्म ही भक्ति परख फिल्मों से माना जाता है। शुरुआती दौर में लोगों को लुभाने के लिए हिंदी सिनेमा में कृष्ण से संबंधित या अन्य देवी-देवताओं से संबंधित फिल्मों का निर्माण हुआ। साथ ही हिंदी सिनेमा भारतीय लोक परंपरा से प्रभावित रहा है तो हिंदी सिनेमा में देवी देवताओं के अस्तित्व और उनको चमत्कार को दिखाने के लिए जिन गीतों का सहारा लिया गया वह भजन था। इसलिए जब भी फिल्मों में देवी देवताओं की आराधना की गई है तो भजन के माध्यम से की गई है। इस तरह से भजन हिंदी सिनेमा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और हिंदी सिनेमा भी भजन के प्रचार-प्रसार में भजन की लोकप्रियता बढ़ाने में उतना ही कारगर साबित हुआ है।

बीज शब्द : *हिन्दी सिनेमा, वंदना, भजन, ईश्वर।*

प्रस्तावना –

भारत में संगीत को मुख्य रूप से तीन भागों में बांटा जाता है। 1- शास्त्रीय संगीत, 2- सुगम संगीत, 3- लोक संगीत। भजन सुगम संगीत की श्रेणी में आता है। इसका आधार शास्त्रीय संगीत या लोक संगीत कुछ भी हो सकता है। भजन को मंच पर भी प्रस्तुत किया जा सकता है, लेकिन मूल रूप से यह किसी देवी-देवताओं की प्रशंसा में गाया जाने वाला गीत है। जैसे भगवान शिव भगवान गणेश जी व श्रीकृष्ण, या फिर देवी दुर्गा के लिए गाए जाने वाले गीत। भजन का अर्थ है - साझा करना भजन के माध्यम से धार्मिक विषयों को गीतों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। भजन गायात्मक होता है। भजन का विकास विभिन्न भक्ति आंदोलनों से हुआ है, जिसमें कबीर, मीरा भाई, रैदास, सूरदास आदि लोग इस परंपरा के पोषक रहे हैं, जो भजन के माध्यम से अपने आराध्य का गुणगान करते थे। भजन मुख्य रूप से मंदिरों में गाया जाने वाला गीत है या फिर सन्यासियों का जमावड़ा जहां होता है, वहाँ सन्यासी लोग भजन गाते हैं। भजनों को जब फिल्मों में प्रयोग किया जाने लगा तब यह आम जनमानस में पूरी तरह से फैल गया। पहले भजन केवल साधु संत ही ज्यादातर गाया करते थे।

* **शोधार्थी, संगीत विभाग, वीर बहादुर सिंह पूर्वाञ्चल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उत्तर प्रदेश**

हिंदू धर्म में भजन संगीत कई रूप में पाया जाता है। शास्त्रों, महाकाव्य, और संतों के शिक्षाओं को, देवताओं के प्रति प्रेम को, उनकी साधना को भक्ति के भजन के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। भक्ति का प्रचलन लगभग सभी धर्मों और संप्रदायों में पाया जाता है क्योंकि इसका प्रयोग अपने आराध्य की स्तुति के लिए किया जाता है। इस भजन संगीत में शास्त्रीय एवं लोक वाद्यों का प्रयोग भी होता है।

हिन्दी सिनेमा और भजन

यदि हम हिंदी सिनेमा में भजन के प्रयोग की चर्चा करें तो यह पाएंगे कि हिंदी सिनेमा में धार्मिक विषय को लेकर फिल्म का इतिहास बहुत पुराना है या यूँ कहें कि हिंदी सिनेमा की शुरुआत ही धार्मिक फिल्म से हुई थी। लेकिन यह अनिवार्य नहीं है कि भजन का प्रयोग केवल धार्मिक फिल्म में ही हो। बल्कि भजन का प्रयोग हर ऐसे फिल्म में किया गया है, जहां पर मनुष्य का ईश्वर के प्रति अटूट श्रद्धा है, अटूट भक्ति है। वह जब किसी मुसीबत में फंसता है तो अपने आराध्य को जरूर याद करता है। फिल्म में भजन के माध्यम से बहुत सारे चमत्कार भी दिखाये गए जो कि सामान्य जिंदगी में संभव नहीं है। एक फिल्म आई थी अमर, अकबर, एंथोनी (1977) इस फिल्म का एक गीत है 'शिरडी वाले साईं बाबा' इस गीत में दिखाया जाता है कि 'निरुपमा राय' इस फिल्म में एक अंधी का किरदार कर रही थी। गीत के दौरान उनको आंखें मिल जाते हैं और फिर से देखने लगती हैं। इस प्रकार के चमत्कारों को फिल्मों में दर्शाने में भजन का सहारा लिया जाता है।

हिंदी सिनेमा में बहुत सारे संगीतकार हैं, जिन्होंने भजन की रचना की है। इन्हीं संगीतकारों में एक नाम आता है रवींद्र जैन का जिन्होंने बहुत सारे भक्ति परक गीतों की रचना की, उनको अपने संगीत से संवारा। रवीद्र जैन के कैरियर की शुरुआत की एक फिल्म थी 'गीत गाता चल' (1975), इस फिल्म में रविंद्र जैन ने संगीत निर्देशन किया था और इस फिल्म में उनके द्वारा दो भजन गीतों की रचना की गई थी। पहला गीत है 'मंगल भवन अमंगल हारी' तथा 'श्याम तेरी बंसी पुकारे राधा नाम' उनकी एक और फिल्म थी 'राम तेरी गंगा मैली' इसमें भी इन्होंने एक भजन की रचना की, जिसका बोल था 'एक राधा एक मीरा' इस गीत को लता मंगेशकर ने अपनी आवाज दी थी। रविंद्र जैन 'विवाह' फिल्म में भी एक भजन की रचना की 'राधे कृष्ण की ज्योति' इस भजन को गाया था श्रेया घोषाल जी ने। दो आंखें बारह हाथ फिल्म के भजन के 'मालिक तेरे बंदे हम' गीत को लता मंगेशकर ने गया। इस भजन को लोगों ने खूब सराहा और जनता के बीच में यह भजन काफी लोकप्रिय भी हुआ।

1961 में फिल्म आई थी 'हम दोनों' इस फिल्म का एक भजन था 'अल्लाह तेरो नाम' इसकी रचना शाहिर लुधियानवी ने की थी और इस गीत को गाया था 'लता मंगेशकर' ने। फिल्म 'मैं चुप रहूंगी' का भजन था 'तुम ही माता तुम ही पिता हो तुम ही हो बंधु तुमी सखा हो' इसमें ईश्वर को अपना सब कुछ मानकर इस भजन की रचना की गई थी। इस भजन को गाया था 'लता मंगेशकर' ने और इसमें संगीत दिया था चित्रगुप्त श्रीवास्तव ने।

फिल्म 'खानदान' (1965) में आई थी इसमें एक गीत है 'तुम्हीं मेरे मंदिर' इस भजन को 'लता मंगेशकर' ने गया। पंडित श्रद्धा राम फिल्लौरी द्वारा रचित एक भजन है 'ओम जय जगदीश हरे' इस भजन को फिल्म पूरब पश्चिम (1970) में फिल्माया गया था, जिसमें अभिनेता थे मनोज कुमार। वसंत देसाई जी ने भी एक भजन की रचना की थी और फिल्म थी गुड्डी (197)1 भजन था 'हमको मन की शक्ति देना' इस गीत को स्कूलों में भी बच्चे खूब गाते थे। आर. डी. बर्मन ने भी हिंदी सिनेमा में भजन लिखे। आर. डी. बर्मन द्वारा रचित भजन है 'तेरी है जमी तेरा आसमां' फिल्म थी 'द बर्निंग ट्रेन' (1980) इस भजन को गया था 'पद्मिनी कोल्हापुरी' तथा 'पूर्णिमा' जी ने। एक और गीत जिसे बहुत सारे स्कूलों ने अपनाया भी 'इतनी शक्ति हमें देना दाता' इस भजन गीत को फिल्म 'अंकुश' में फिल्माया गया था। इस गीत को गाया था 'पुष्पा पधारे' और 'सुषमा श्रेष्ठा' ने। संगीतकार नदीम-श्रवण ने फिल्म 'पनाह' में एक भजन का संगीत दिया था। भजन थी 'तेरी पनाह में हमें रखना' इस भजन को उदित नारायण, साधना सरगम और सारिका कपूर ने गाया था। फिल्म 'सीमा' में गाया गया एक गीत 'तू प्यार का सागर है' भी एक भजन है जो बहुत ही प्रसिद्ध हुआ। इस भजन को 'मन्ना डे' ने गाया था और इसका संगीत निर्देशन किया था शंकर-जयकिशन ने। 'मन रे तू काहे न धीर धरे' चित्रलेखा(1964) फिल्म का गीत है गीतकार थे साहिर लुधियानवी और संगीतकार थे रोशन तथा गायकी से संवारा था मुहम्मद रफी ने।

हिंदी सिनेमा में भगवान शिव पर आधारित भजनों को खूब फिल्माया गया है। 1978 में एक फिल्म आई थी 'सत्यम शिवम सुंदरम' इसका शीर्षक गीत ही भजन था 'सत्यम शिवम सुंदरम' इस भजन को 'लता मंगेशकर' ने गाया था और उसका संगीत निर्देशन किया था लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल ने। 'कुंवारा बाप' फिल्म में एक भजन है 'जय भोलेनाथ जय हो प्रभु' यह भी भगवान शिव की आराधना पर आधारित भजन था। इस भजन को 'लता मंगेशकर' और 'किशोर कुमार' ने गाया था। इसका संगीत राजेश रोशन ने दिया था। 1981 में आयी फिल्म 'याराना' में 'भोले ओ भोले' नामक भजन भी भगवान शिव की प्रार्थना में फिल्माया गया है। इस गीत को गाया था 'किशोर कुमार' साहब ने और इसका भी संगीत निर्देशन राजेश रोशन ने किया था।

भगवान गणेश पर आधारित भी बहुत सारे भजन हिंदी सिनेमा में फिल्माए गए हैं। फिल्म डॉन(2006) में भजन था 'मोरिया रे' जो कि गणेश जी को समर्पित था। इस भजन को 'शंकर महादेवन' ने गाया था। 'अग्निपथ' (2011) की फिल्म फिल्म का गीत 'देवा श्रीगणेशा' भी भगवान श्री गणेश को समर्पित है इस गीत की रचना 'अजय अतुल' ने की है और इस गीत को अजय गोगावाले ने गाया है। देवा श्री गणेशा गीत आइफा अवार्ड में बेस्ट प्लेबैक सिंगर के लिए नॉमिनेट किया गया था।

भगवान राम पर आधारित भजन भी हिंदी फिल्मों में फिल्माए गए। 1979 की फिल्म 'सरगम' में एक गीत है जो कि भजन है 'रामजी की निकली सवारी' इसका संगीत निर्देशन लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल ने किया था और उसको गाया था मोहम्मद रफी साहब ने। फिल्म गोपी(1973) में मोहम्मद रफी द्वारा एक भजन 'सुख के सब साथी' भी बहुत लोकप्रिय हुआ था।

हिंदी सिनेमा में दुर्गा देवी पर आधारित बहुत सारे भजनों को फिल्माया गया है। 'अवतार' फिल्म का भजन है 'चलो बुलावा आया है माता ने बुलाया है' इस भजन के माध्यम से दुर्गा माता के शक्तियों का वर्णन किया गया है। इसको गाया था 'आशा भोंसले' ने और 'नरेंद्र चंचल' ने। इस भजन में संगीत दिया था लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल की जोड़ी ने। फिल्म क्रांति(1980) में भी एक भजन था 'दुर्गा है मेरी माता' इस भजन के संगीतकार लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल थे और इस भजन को महेंद्र कपूर साहब ने गाया था। फिल्म सुहाग (1979) में भी एक भजन था 'ओ शेरोवाली' इसमें भी दुर्गा माता की महिमा का वर्णन किया गया है। आवाज थी मोहम्मद रफी की और संगीतकार थे लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल। भजन को दर्शकों ने बहुत सराहा और यह जनमानस में बहुत ही ज्यादा ख्याति प्राप्त हुआ। मर्द फिल्म में 'मां शेरावाली' नामक एक भजन की रचना संगीतकार 'अनु मलिक' द्वारा किया गया और इसके गीतकार 'शब्बीर कुमार' थे। फिल्म 'त्रिमूर्ति' में संगीतकार जोड़ी लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल ने एक भजन की रचना की 'माता माता जय माता' इसमें दुर्गा माता की गई है। इस भजन को 'विनोद राठौर' तथा 'कविता कृष्णमूर्ति' ने गाया था। संगीतकार राजेश रोशन के द्वारा 'करन अर्जुन' फिल्म में देवी दुर्गा के एक रूप मां काली पर आधारित भजन 'जय मां काली' की रचना की गई। इस गीत को 'कुमार सानू' ने गाया था। फिल्म खिलाड़ियों का खिलाड़ी का भजन है 'मां शेरावालिए तेरा शेर आ गया' इस भजन को सोनू निगम ने गया था।

भगवान श्री कृष्ण सभी देवताओं में सबसे प्रिय देवता माने जाते हैं। हिंदी सिनेमा में कृष्ण संबंधित गीत ना हो ऐसा हो ही नहीं सकता। कृष्ण के जन्म से संबंधित जन्माष्टमी, रासलीला, दहीहंडी आज विषयों को बखूबी फिल्माया गया है और उनसे संबंधित बहुत सारे गीत, भजनों की रचना की गई है। एक फिल्म आई थी 'जॉनी मेरा नाम'(1970) इसमें गीत 'मोसे मोरा श्याम रूठा' इस भजन में भगवान श्रीकृष्ण को खुश करने की कोशिश की गई थी। एक फिल्म आई थी 'खुद्दार'(1982) इसमें गीत था 'मच गया शोर सारी नगरी रे' जिसको 'लता मंगेशकर' और 'किशोर कुमार' ने अपनी आवाज दी। 'मन तड़पत हरि दर्शन को आज' बैजू बावरा(1952) फिल्म का यह गीत भी बहुत प्रसिद्ध है। गीतकार थे शकील बदायूंनी और संगीत दिया था नौशाद ने तथा रफी साहब ने अपनी आवाज दी थी। इसी फिल्म का एक और गीत था ओ दुनिया के रखवाले, सुन दर्द भरे मेरे नाले इसको भी मुहम्मद रफी ने गाया था। इसकी रचना राजेश रोशन ने की थी। बड़ी देर भई नंदलाला' नामक भजन फिल्म 'खानदान' (1965) की है। इसके संगीतकार 'रवि' थे। गीतकार राजिंदर किशन द्वारा लिखा गया तथा गायक मोहम्मद रफी की आवाज के जादू ने इस भजन को बहुत लोकप्रियता दिलाई थी। 'ओ माय गॉड'(2012) फिल्म में एक गीत था 'गो गो गो गोविंदा' जो कि जन्माष्टमी का त्यौहार मनाते हुए फिल्माया गया था। गो गो गो गोविंदा गीत को 'श्रेया घोषाल' और 'अमन चित्रा' ने गाया था और इस गीत में संगीत दिया था हिमेश रेशमिया ने। 2001 की फिल्म 'लगान' में ए. आ. र रहमान ने लता मंगेशकर और साधना सरगम उदित नारायण की आवाज में भजन 'ओ पालनहारे' की रचना की। 2003 की फिल्म 'साया' में एक भजन था 'हर तरफ हर जगह कहीं पर है' इसमें भगवान की महिमा का वर्णन किया गया है। इस गीत को आवाज दिया 'श्रेया घोषाल' और के. के. ने। फिल्म 'रंग दे बसंती' का गीत 'एक ओंकार' सबको बहुत मधुर

लगा। इस गीत को गया था हर्षदीप कौर ने गीत की रचना ए. आर. रहमान ने की थी। 2014 की फिल्म 'पीके' में भगवान से संबंधित गीत था 'भगवान है कहां रे तू' इस गीत के माध्यम से ईश्वर के अस्तित्व पर सवाल उठाया गया था। इस गीत को गाया था सोनू निगम ने और इसके संगीत निर्देशक शांतनु मोइत्रा थे।

इस तरह हम देखते हैं कि जहां पहले भजन को मंदिरों में गाया जाता था या फिर इसको साधु संत गाया करते थे जब से फिल्मों में भजन का प्रचलन बढ़ा, तमाम प्रसिद्ध गायकों ने भजन को गाया और तमाम संगीतकारों ने भजन की धुनों को अपने संगीत से संवारा। तब से भजन भी आम जनमानस में प्रचलित हो गया और लोकप्रियता की ऊंचाइयों को भी छूने लगा। लोग भजन की धुनों पर भी थिरकने लगे। मंचों पर या फिर धार्मिक उत्सवों में लोग भजन गीत चला कर उसके धुनों पर नृत्य करते हुए देखे जा सकते हैं। जब से हिंदी सिनेमा की शुरुआत हुई है, तभी से भगवान की आराधना में बहुत सारे भजनों का निर्माण हुआ और आज आधुनिक समय में डीजे पर बजने वाले गाने की तर्ज पर भी भजनों का निर्माण हो रहा है। भजन गायन में एक उत्सव की तरह जो धुनें व्याप्त हैं वह भजन की चरम उपलब्धि है। जहां लोग पहले भजन को केवल साधु संतों का गीत मानते थे। आज उस भजन को गाने में, उसको अपनाने में, उस पर थिरकने में कोई संकोच नहीं करते हैं। जिस प्रकार से फिल्मों में भजनों को फिल्माया गया है उससे लोगों के अंदर ईश्वर के प्रति आस्था में भी बढ़ोतरी हुई दिखाई देती है। लोग दार्शनिक स्थलों पर अपने आराध्य देवताओं के भजन गाते हुए जाते हैं। बड़े उत्साह के साथ वहां पर सुख अनुभूति प्राप्त करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं की भजन ने हिंदी सिनेमा को जितना समृद्धि किया है हिंदी सिनेमा ने भी भजन को उसी तरह से लोकप्रिय बनाने का कार्य किया है।

संदर्भ :-

1- केसरवानी, राजकुमार. (2012). *बॉम्बे टॉकी बातें फिल्मों की .... फिल्मी गीतों की*. दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

2- वर्मा, केशवचंद्र. (1997). *सुरलोक*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन

3- शर्मा, भगवतशरण. भारतीय संगीत का इतिहास. संगीत कार्यालय हाथरस

4- काव्य. https://www.amarujala.com/kavya/kavya-charcha/mohammed-rafi-a-top-bhajan-singer-in-hindi-filmy-kingdom

5- देसाई, मनमोहन. (निर्देशक). (1977). *अमर अकबर एंथोनी*. (चलचित्र)

सूरजमल जाट और जाट साम्राज्य का चरमोत्कर्ष

डॉ. ओंकार नाथ चौधरी*

oankarmotia1975@gmail.com

हम जानते हैं कि बदन सिंह ने जाट राज्य की नींव रखी, तो मात्र अपने संसाधनों, अध्यावसाय और चारित्रिक दृढ़ता से सूरजमजल ने पहले एक रीजेंट (प्रतिशासक) और बाद में राजा की हैसियत से इसे सुदृढ़ किया। वह तत्कालीन भारत[1] में महानतम राजा की बुलंदियों तक पहुँचा, जिसके पास न केवल विशाल राज्य था, बल्कि संपन्नतम राजकोष और सर्वाधिक शक्तिशाली सेना थी।

सूरजमल जाट के नेतृत्व में जाटों ने मुगल साम्राज्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण भूमिका अभिनीत करनेवाली अपनी स्थिति बनाई थी। शाही वजीर सफदरजंग उसकी मैत्री का सदा इच्छुक रहा और इमाद-उल-मुल्क उसके संरक्षण का अभिलाषी था और संभवतः पानीपत के युद्ध का इतिहास भी कुछ और होता यदि भाऊ ने उसकी सलाह की उपेक्षा न कर दी होती। यद्यपि जाट राजा के पास आवश्यक ताकत थी तब भी उसने दूरस्थ प्रदेशों पर शासन करने का कभी इरादा नहीं किया। केवल 1757 को छोड़कर, जाट राज्य 'असहाय, आक्रांत और अकिंचन लोगों' के लिए सदा सुरक्षित और तत्पर शरणस्थली रहा।[2]

अपने पिता (जिसने एक गाँव की मालगुजारी भिखारियों में बाँटने के लिए अलग कर रखी थी) का अनुसरण करते हुए सूरजमल ने उसके धर्मादा कार्यों में सुधार किया। बताया जाता है कि सोमनाथ चतुर्वेदी की अध्यक्षता में उसने एक धर्मार्थ विभाग स्थापित किया था।[3] इसको देखते हुए वैंदेल का यह दावा[4] निराधार प्रतीत होता है, यद्यपि जिसे प्रोफेसर जदुनाथ सरकार ने बिना जाँचे ज्यों-का-त्यों स्वीकार किया है[5], कि सूरजमल के दिल में औरों की संपत्ति के प्रति 'अधम' और सुधारातीत लोभ था, कि नियमित रूप से डकैती डालनें के लिए उसने डाकू नियुक्त कर रखे थे, और उसकी कंजूसी का यह हाल था कि गरीबी का शिकार होकर उसके परिवार वालों और फौजों को दुःख में दिन काटने पड़े थे। वैंदेल का समर्थन करना तो दूर रहा, नूर-उद-दीन (जिसे इमाद की सेवा में होने के नाते सूरजमल के चरित्र का अध्ययन करने का अवसर मिला होगा) इस बात का साक्षी है कि सूरजमल अपने राज्य में डकैतों से किस सख्ती से पेश आता था। जैसाकि ऊपर वर्णित किया जा चुका है, जो डकैतों को प्रश्रय देते थे उनके विरूद्ध युद्ध करने तक वह पहुँच गया। यदि वे अपनी संपत्ति और सम्मान की सुरक्षा के प्रति आश्वस्त नहीं होते और यदि जाट राज्य डकैतों के स्वामी द्वारा शासित होता तो व्यापारी तथा विभिन्न समुदायों के अन्य लोग जाट राज्य में स्वेच्छा से जाकर क्यों बस जाते?[6]

* **विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, सिदो कान्हु मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका**

इसी तरह, इधर-उधर थोड़ी-बहुत त्रुटियों की तो बात और है, कोई दूरदर्शी, साधन संपन्न और महत्वाकांक्षी नेता अपनी सेना को गरीबी की स्थिति में डालकर विद्रोह करने के लिए (जान-बूझकर उनका वेतन न देकर) कैसे मजबूर कर सकता है, और वह भी कई वर्षों तक।

शाह वलीउल्लाह ने उस पर इस्लाम का उत्पीड़क होने का आरोप लगाते हुए उसे एक धर्मांध के रूप में पेश किया है जिसने अपने पूरे राज्य में 'अजान और सलात' पर पाबंदी लगा रखी थी।[7] यद्यपि यह आरोप उसके उत्तराधिकारी के संबंध में कुछ सीमा तक सही है,[8] किंतु सूरजमल के मामले में यह दृष्टिकोण अतिशयोक्तिपूर्ण और अनुचित प्रतीत होता है। स्वभाव से ही वह ऐसे धर्मांध व्यवहार का अभ्यस्त नहीं था। हिंदूओं के लिए एक महान समादृत केंद्र ब्रज, विशेषतया मथुरा, पर बार-बार अत्याचार हुए, जिनमें से एक तो सूरजमल के जीवनकाल (1757) में ही हुआ था। यद्यपि इस घटना ने उसके हृदय को गहरी वेदना पहुँचाई थी तब सूरजमल ने अपनी सत्ता के चरमोत्कर्ष के समय भी मथुरा में एक भी मस्जिद नहीं गिराई और इसके लिए उसे भाऊ की कटु उक्तियाँ सुननी पड़ी।[9] प्रतिशोध की भावना तो दूर उसने अपनी राजधानी में उदारतापूर्वक एक मस्जिद भी बनवाई, जैसाकि पहले बताया जा चुका है।[10] हम नहीं जानते कि उस काल का कोई और हिंदू राजा इस तरह के कार्य पर गर्व कर सकता है। इस संदर्भ में यह भी ध्यान देने योग्य है कि उसके निजी सेवकों में मुसलमान भी थे जो अपने स्वामी के प्रति सदा निष्ठावान रहे और उसके साथ अपने प्राण भी दे दिए।[11]

मोहम्मदशाह के रूहेला अभियान के समय (1745) वीरतापूर्वक लड़ते हुए या बागरू में जयपुर हरावल दस्ते का नेतृत्व करते समय (1748), चाहे रामचतौनी में अफरीदियों को धूल चटाते हुए (1750) या गढ़ी मैदान में नजीब के रूहेलों को पराजित करते समय (1753), या सराय शोभा चंद में मीरबख्शी को पराभूत करते हुए (1750), छोटी-मोटी अन्य छिटपुट लड़ाइयाँ लड़ते समय सूरजमल ने अपने पीछे वीरता और दृढ़ साहस की ख्याति छोड़ी। मराठा-इमाद के असंख्य सैनिकों (1754) का सफलतापूर्वक सामना करते हुए और दुर्रानी की बहुसंख्यक फौज के आक्रमणों के समय भी (1757, 1760) उसने अपने कुशल सेनापतित्व का परिचय दिया। उसे एक मात्रा असफलता, जिससे वह प्रत्यक्षतः संबंधित था, गृहयुद्ध के समय सफदरगंज के साथ प्राप्त हुई थी। यदि उसकी अचानक मृत्यु न हुई होती तो हिंडन में अंतिम परिणाम क्या होता, इसका अनुमान प्रतिपक्षियों की अपनी-अपनी ताकत और उनके संसाधनों को देखकर आसानी से लगाया जा सकता है।

परिश्रमशील जाट किसान में सदा सर्वोत्तम योद्धा के गुण भी होते हैं। एक बड़े संकट के समय[12], जैसाकि मराठा आक्रमण (1754) के समय उपस्थित हुआ था, सूरजमल ने जाटों की सेवाओं का लाभ उठाया जो जितने उद्योगशील किसान थे उतने ही उत्कृष्ट योद्धा भी थे। इसके साथ ही उसने एक अच्छी स्थायी सेना की भी जरूरत समझी। अतः इसके लिए कदम भी उठाए। उसकी सेना में यद्यपि जाट अधिक संख्या में थे, फिर भी अन्य जातियों के भी लोग उसमें थे।[13] सियर से पता चलता है कि इस महान जाट सेनापति ने स्वयं अपने घुड़सवार बंदूकबाजों को अपनी ही शैली में प्रशिक्षित किया था। उसने "घोड़े पर बैठकर निशाने पर गोली

साधने और पिफर घूमकर आड़ में उसे (बंदूक को) फिर भरने के लिए एक अभ्यास प्रचलित किया था। रोजाना अभ्यास कर वे ऐसे फुर्तीले और खतरनाक निशानेबाज बन गए थे कि भारत में कोई अन्य सेना युद्धभूमि में उनका सामना करने का साहस नहीं कर सकती थी। और न किसी भारतीय राजा में इतना साहस था कि इस जैसे राजा से युद्ध करके उसे परास्त करने की वह कल्पना भी कर से।[14]

शांत आकलनशील दूरदृष्टि, दूरदर्शी होने की एक गंभीर अनुभूति, अनुकरणीय चतुराई के धनी सूरजमल की प्रतिभा कूटनीति के क्षेत्र में चहु और प्रकाशित हुई।[15] लोगों और मामलों को निपटाने में उसने अद्भुत चतुराई का परिचय दिया। गहरे संकट के क्षणों में भी उसने सराहनीय प्रत्युत्पन्नमति और धैर्य का प्रदर्शन किया। 'षड्यंत्रों और अनैतिक कूटनीति' के वातावरण में उसने न केवल पाखंडी मुगलों और धूर्त[16] मराठों को, वरन चालाक अब्दाली और होशियार राजपूतों को भी हतप्रभ किया। निस्संदेह उसकी स्थिति बेहद नाजुक थी क्योंकि वह दो सर्वाधिक दुर्धर्ष और शत्रुतापूर्ण शक्तियों के बीच खड़ा था, उत्तर में अब्दाली था और दक्षिण में बलात अधिग्रहण करनेवाले मराठे थे। उसका शानदार खजाना इन लोभियों के लिए सतत आकर्षण का केंद्र रहा तो उसकी विस्तावादी कार्रवाई तथा अपने पड़ोस में ही उसका स्वतंत्र अस्तित्व मुगलों और राजदूतों दोनों को चिढ़ा रहा था। इसके अतिरिक्त इस्लामी पुनर्जागरण की शक्तिशाली ताकतें भी उसकी अत्यधिक विरोधी थीं। अब्दाली और मराठों ने अनेक बार उसे नेस्तनाबूद करने की कोशिश की। वैसे भी सामान्यतया उनकी ओर से सूरजमल के लिए एक संभावित खतरा बना ही रहता था।

इन परिस्थितियों में जाट राज्य का अस्तित्व बनाए रखना ही एक दुष्कर कार्य था। परंतु अपनी अद्भुत कूटनीतिक नमनीयता, 'विलक्षण' बुद्धिमत्ता और वीरोचित धैर्य से वह ने केवल अपने सारे दुश्मनों की कार्यवाहियों को नाकाम करने में सफल हुआ, वरन् लगातार आए संकटों के बावजूद वह अपनी संपत्ति को बढ़ाने में सफल हुआ। वैंदेल कहता है, जब और लोग निचोड़े जा रहे थे तब सूरजमल ने अपने ही साहस से मराठा-दुर्रानी की जबरदस्त वसूली से स्वयं को बचाए रखा। जब एक ओर अन्य शक्तिशाली राजा अपने साधनों को लुटाकर अब्दाली के साथ हो लिए थे, तब वह दुर्गेश शत्रु (अब्दाली) से अपने राज्यक्षेत्र को बचाने में सफल रहा था। तत्कालीन संकट में, जब उसके (सूरजमल के) पड़ोसी भी अछूते नहीं बचे थे तब सूरजमल ने शांति सुनिश्चित कर ली थी, और जब हर व्यक्ति हार रहा था तब उसने मराठों से, जिनकी पराजय का उसने पूर्वानुमान कर लिया था, स्वयं को अलग कर लिया था, किसी का सहारा लिए बिना किसी युद्ध के बिना उसने अब्दाली को वापस कर दिया, और तब सभी की क्षति हो रही थी तब वह अधिक शक्तिशाली बन गया था। अंत में जेसुइट फादर सही लिखता है, "मैं हिंदुस्तान में ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं जानता जो ऐसा कर सकता था।"[17] ऐसा था सूरजमल, अपने समय का निपुण कूटनीतिज्ञ। निस्संदेह नजीब-उद-दौला भी कूटनीतिक चतुराई और राजनीतिक दूरदर्शिता का स्वामी था।[18] परंतु दोनों में अंतर यह था कि नजीब के पास अहमदशाह अब्दाली जैसा शक्तिशाली संरक्षक, मुक्तिदाता था जबकि सूरजमल ने अकेले दम पर अब्दाली और मराठों को एक साथ और एक ही समय छका दिया। इसके अतिरिक्त सूरजमल ने अपने राज्य को प्रगति प्रदान की जबकि नजीब ऐसा नहीं कर सका।[19]

"राजा सूरजमल एक अच्छे शासक के सभी गुणों से संपन्न था... और अपनी प्रजा तथा कोष का जबर्दस्त विस्तार करने में वह अपनी सरकार के माध्यम से सफल हुआ।"[20]

यह मुख्यतः इस राजा के अथक परिश्रम का परिणाम था। उसकी मृत्यु के समय तक जाट राज्य लंबाई में 200 मील (पूर्व-पश्चिम) और चौड़ाई में 140 मील (उत्तर-दक्षिण) तक फैल चुका था जिसमें दिल्ली सूबे का एक और आगरा का तीन-चौथाई भाग शामिल था। हमारे इतिहासकारों में से एक कहना है :

"(पश्चिम दिशा में) यमुना के पार दिल्ली के दरवाजों से लेकर चंबल तक उसके अतिरिक्त किसी अन्य की सरकार नहीं थी, और गंगा की तरफ भी लगभग यही स्थिति थी।"[21]

मोटे तौर पर उसमें आगरा, मथुरा, धौलपुर, अलीगढ़, बुलंदशहर, मैनपुरी, मेरठ, रोहतक, गुड़गाँव, रेवाड़ी के जिलों के साथ उसका मूल राज्य भरतपुर शामिल थे।

जाट राजा मे अपने जाट भाइयों की सहज, नैसर्गिक संवेदनशीलता को समझने की दृष्टि थी। वह संभवतया जानता था कि उनके लिए अपने व्यक्तिगत या कबीलाई स्वाधीनता के गहरे पैठे लोकतांत्रिक स्वभाव और भावनाओं को अचानक या पूरी तरह छोड़ देना, असंभव नहीं तो, कठिन अवश्य था। अतः मुगल शैली की स्वेच्छाचारी, निरंकुश, प्रणाली को इसी रूप में न अपनाकर उसने बुद्धिमानी का परिचय दिया। प्रोफेसर कानूनगो ठीक ही बताते हैं कि सूरजमल की मृत्यु के समय मौजूद जाट राज्य तब भी सामंती संघ था, और जाट राजा उसका सर्वोच्च प्रमुख था।[22]

उसकी बुद्धिमत्ता, कौशल, प्रशासनिक क्षमता और उसके द्वारा सुनिश्चित संरक्षण के परिणामस्वरूप दीर्घकाल तक व्याप्त रही अव्यवस्था और अराजकता के बाद उसके नियंत्रणगत क्षेत्र में 'शांतिपूर्ण' स्थिति वापस आई। जिन क्षेत्रों को उसने अधीन किया था, उनके मूल्य में वृद्धि के लिए उसने "जमींदार के काम को इतने उत्तम प्रकार से निभाया" कि उससे "राजस्व में पर्याप्त वृद्धि हो गई।" इसके साथ ही महलों और किलों, बाजारों पर काफी बड़ी राशि खर्च करने के बाद भी उसने अपने खर्च को इस तरह नियंत्रित किया कि "अनेक वर्षों तक" वह अपने राज्य के वार्षिक राजस्व का "कम-से-कम आधा भाग" बचाता रहा।[23]

हम जानते हैं कि उसके शासन के प्रारंभ में उसका वार्षिक राजस्व "एक करोड़ रुपये" था।[24] फिर 1760 में वह "डेढ़ करोड़" हुआ।[25] इसके पश्चात् इसमें वृद्धि होती गई तथा परवर्ती वर्षों में वह हर साल "175 लाख" वसूल करता था, जबकि उसका वार्षिक खर्च लगभग 65 लाख रुपये था।[26] उसकी प्रतिवेदित आत्मस्वीकृति के अनुसार 1760 में उसके राजकोष में लगभग सात करोड़ रुपये थे।[27] अतः वैंदेल का यह अनुमान सही है कि उसकी मृत्यु के समय उसके पास 10 करोड़ रुपये थे, जिसका अधिकांश भूमि में दबा था। इसमें काफी मूल्य के जेवरात और अन्य मूल्यवान वस्तुएँ शामिल नहीं है। तथापि, लोक विश्वास के अनुसार उसके पास हाथ में 15 से 20 करोड़ रुपये थे।[28]

प्रशासन द्वारा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से दिए गए प्रोत्साहन के कारण वाणिज्य-व्यापार भी खूब फला-फूला। सूरजमल ने अपने समूचे राज्य में पारगमन कर की छूट दे रखी थी। इसके फलस्वरूप 'अनाज

अत्यधिक सस्ता' हो गया था।[29] अन्य वस्तुओं के संबंध में भी अवश्य ऐसा ही हुआ होगा। यदि सूरजमल ने राजकीय इमारतों का निर्माण कराया तो वह बाजरों को बनाने की आज्ञा देना भी नहीं भूला। यदि 'इमाद' पर विश्वास किया जाए तो उसने व्यापारियों की सुविधा के लिए डीग और अन्य स्थानों पर हजारों दूकानें बनवाई।[30] जैसाकि अन्यत्र बताया गया है, उस समय व्याप्त अराजकता के दौर में उसके दयावान शासन द्वारा किए गए ऐसे कार्यों और सुनिश्चित शांति ने जाट राज्य के बाहर के व्यापारियों को आकर्षित किया। वैंदेल के इस कथन में अतिश्योक्ति नहीं है कि :"मैं यह स्वेच्छया स्वीकार करता हूँ कि जाट समृद्ध हैं और आज भी नादिरशाह, अब्दाली और मराठों द्वारा पहुँचाई गई क्षति के बावजूद हिंदुस्तान में यदि कोई खजाना सुरक्षित है तो वह जाटों का है।[31]

अपनी विशाल संपदा में सूरजमल ने शाही शानो-शौकत की भी वृद्धि की तथा कला और साहित्य को भी संरक्षण प्रदान किया। पहली बार हमें यह पता चलता है कि उसके ही प्रोत्साहन पर कवि सोमनाथ ने, जिसे सूरजमल का संरक्षण प्राप्त था, 'ब्रजेंद्र विनोद' नामक एक लंबी कविता लिखी थी।[32] बाद में जब सोमनाथ सेवानिवृत्त होकर वैर चला गया तो सूरजमल के भाई, प्रतापसिंह ने उसे संरक्षण प्रदान किया।[33] इसके कुछ ही समय बाद प्रतापसिंह के पुत्र, बहादुरसिंह, ने भी ऐसा ही किया।[34] इस तरह सूरजमल के राज्य में अन्य कलाओं के विकास के साथ-साथ साहित्यिक गतिविधियों को भी प्रोत्साहन मिलता रहा। वस्तुतः सूरजमल कला का महान पारखी था। नेपोलियन ने पेरिस को सजाने के लिए विजित स्थलों के कला की सर्वोत्तम वस्तुओं को हथियाया था। अपनी राजधानी को शोभित करने के लिए महमूद गजनवी तो कलाकारों को ही अपने साथ ले गया था। एक तरह से सूरजमल इन दोनों गुणों से संपन्न था। एक ओर, वह अपने दरबार को सँवारने के लिए आगरा से मुगल शानो-शौकत की चुनी हुई वस्तुएँ ले गया तो दूसरी ओर, उसकी संपत्ति और इच्छा शक्ति ने कंगाल दिल्ली दरबार के गरीब शिल्पियों को कला के नए गृह में आने के लिए प्रेरित किया। इसके अतिरिक्त अपने डीग, भरतपुर वैर तथा कुंभेर के किलों पर सूरजमल ने करोड़ों रुपये खर्च करके वहाँ सुंदर और आकर्षक इमारतें, सरोवर और उद्यान बनवाए।[35] 'इमाद' के रचनाकार का कथन है कि सूरजमल द्वारा निर्मित कुछ इमारतें इतनी शानदार थीं कि वैसी "अन्यत्र नहीं मिलती, यहाँ तक कि दिल्ली और आगरा में भी नहीं।"[36] इन सबमें डीग का राजप्रसाद वास्तुकला की दृष्टि से सबसे अधिक भव्य और 'उत्कृष्ट' था, जिसको सूरजमल ने इतने विशाल स्तर पर योजना बनवाकर निर्मित करवाया था कि 1768 तक भी उसका काम समाप्त नहीं हुआ था। दूर-दूर की यात्राएँ किए हुए एक प्रत्यक्षदर्शी ने बताया है कि :"इस राजप्रसाद को देखे बिना उसके विस्तार और शान की कल्पना करना कठिन है... मैंने हिंदुस्तान में और कोई (ऐसा प्रासाद) नहीं देखा जो इसकी भव्यता की बराबरी कर सके।[37]

जैसाकि वैंदेल ने उसे चित्रित किया है, यदि यह महान जाट शासक संपत्ति का इतना लोभी था तो निश्चय ही वह यह भी जानता था कि उदारता और बुद्धिमानी से कैसे खर्च किया जाए। यद्यपि उनका सहज और अनगढ़ स्वभाव जो जाट किसानों की अपनी विशेषता है- न्यूनाधिक रूप से अप्रभावित रहा, तथापि जाटों की समृद्धि, शक्ति तथा आमतौर पर हर बात पर" अपनी छाप छोड़ी। जहाँ केवल उनके राजा ही आगरा और

दिल्ली की शाही शानो-शौकत देखते थे। अतः एक सामान्य व्यक्ति इस राजसी वैभव को "डीग, कुम्हेर, और भरतपुर में ही प्रत्यक्ष देख सकता था।[38]

अंततः, सूरजमल ने जाटों को छोटे जमींदारों के रूप में प्राप्त किया था, परंतु थोड़े ही समय में उसने उन्हें 'हिन्दुस्तान से भी अधिक प्रसिद्धि' तक ऊँचा उठा दिया।[39]

संदर्भ :

1. सियर, 27 और सुजान, 200 भी, दीर्घ, 5-6, सोमनाथ में माधव विनोद, 318.
2. मिरात, 893.
3. गंगा सिंह (कृति उद्धरण, 264) इस आशय की सूचना (धर्मादा विभाग) देते हैं, यद्यपि अपने समर्थन में इन्होंने किसी इतिहा सकार को उद्धृत नहीं किया है। तथापि, एक प्रत्यक्षदर्शी के बयान से यह सिद्ध होता है कि सूरजमल दान दिया करता था। दीर्घ, 6 और 7.
4. मेम्वोआर दे यात, 44, 46 और 63.
5. सरकार कृत फाल, II 454-455.
6. कानूनगो कृत जाट्स, 289, दीर्घ 1, इमाद, 84.
7. शाह, 2
8. कानूनगो कृत जाट्स, 220-221.
9. इमाद 120-121.
10. ऊर्ध्व, 264.
11. डॉ. गिरीश चन्द्र द्विवेदी, जाट और मुगल साम्राज्य, सम्पा. डॉ. वीर सिंह, ओरिजिन्लस, दिल्ली, परिशिष्ट, 4 यहाँ यह बताना असंगत नहीं होगा कि उसका भाई प्रतापसिंह, जो प्रारंभ में जाट प्रशासन कार्य में सूरजमल का सहयोगी था (बदनसिंह के शासनकाल के दौरान), निश्चय ही मुस्लिम संस्कृति और मुसलमानों से मैत्री पसंद करता था। इमाद, 84.
12. ऐसे अवसरों पर कृषक योद्धाओं को भोजन, जिसमें एक सेर अनाज, थोड़े चने और घी, पारिश्रमिक के रूप में दिया जाता था। युद्ध समाप्त होने पर वे अपने खेतों में लौट जाया करते थे। मेम्वोआर दे यात, 67 और 83.
13. सुजान चरित्र में ऐसे कई प्रकरण हैं जिनमें भरतपुर की सेना में गैर-जाट सैनिकों के होने की चर्चा है। संयोगवश, यह भी जान लेना रोचक है कि ऊपरी दोआब की सर्वखाप सेना में भी कई गैर-जाट समूह शामिल थे, जो कान्हाराम से स्पष्ट हो जाता है।
14. सियर, IV 28, नूर, 66b

15. प्रोफेसर हरीराम गुप्ता उसे ‘‘अपने जमाने का सबसे सयाना और चतुर कूटनीतिज्ञ’’ बताते हैं। पानीपत, 153.
16. कानूनगो कृत जाट्स, 65.
17. मेम्वोआर दे यात, 54.
18. वही, 67
19. सरकार कृत फाल, II 414 और 454.
20. तवारीख-ए-हुनूद, 20a 20b
21. मेम्वोआर दे यात, 56, कानूनगो कृत जाट्स, 167.
22. कानूनगो, जाट्स 221, पांडेय, भरतपुर, 82.
23. मेम्वोआर दे यात, 57, 67.
24. शाह, 2
25. इमाद, 108
26. मेम्वोआर दे यात, 67, सरकार कृत फाल, II 455.
27. इमाद, 108.
28. वैंदेल ने जाट खजाने की चर्चा अति विस्तार से की है। मेम्वोआर दे यात, 64-67, 86.
29. नूर, 83b
30. इमाद, 84 और दीर्घ, 1
31. मेम्वोआर दे यात, 66.
32. ब्रजेंद्र विनोद, 212.
33. प्रतापसिंह के संरक्षण में इसने निम्नलिखित रचनाएँ की : रामचरित्र रत्नाकर, रामकलाधर और रस पीयूषनिधि।
34. बहादुरसिंह के प्रोत्साहन पर उसने संस्कृत नाटक ‘मालती माधव’ का हिंदी में माधव विनोद शीर्षक से अनुवाद किया।
35. तवारीख-ए-हुनूद, 22a और दीर्घ, 1-2, सोमनाथ में रस पीयूषनिधि, 6, कानूनगो कृत जाट्स 287f.
36. इमाद, 85.
37. मेम्वोआर, दे यात, 44, और दीर्घ 1.
38. मेम्वोआर, दे यात, 50-51.
39. मेम्वोआर, दे यात, 67.

उन्नीसवीं शताब्दी में महिला उद्धार आन्दोलन

डॉ. अमर राम*

amarramdev2017@gmail.com

19वीं शताब्दी में सामाजिक-धार्मिक सुधारकों के सम्मुख भारतीय महिलाओं के उद्धार से सम्बन्धित प्रश्न सामाजिक सुधार कार्यक्रम का प्रमुख मुद्दा थे। उस समय महिलाओं का निर्लज्जतापूर्वक शोषण किया जाता, पिछड़ा रखा जाता था और वे अनेक क्रूरतापूर्ण कुप्रथाओं, जैसे कि सती, बालिका वध, पर्दा, बालिका विवाह, बहु-पत्नीत्व आदि का शिकार बनाई जाती थी। समाज सुधारकों का कहना था कि अज्ञानता एवं भय के कारण इन कुत्सित कुप्रथाओं का जन्म हुआ है और इनका अन्धानुकरण किया जा रहा है।

सुधारकों की दृष्टि में, जब तक महिलाएँ, जो जनसंख्या का लगभग आधा भाग हैं, पिछड़ी और शोषित रहेंगी, तब तक समाज प्रगति कर सकेगा। अतः महिलाओं की स्थिति सामाजिक परिवर्तन का सबसे महत्त्वपूर्ण मापदण्ड है। 19वीं शताब्दी के दूसरे चरण में ब्रिटिश भारत समाज सुधार समूहों की गतिविधियों से गुंजायमान हो रहा था, जिन्होंने महिलाओं की स्थिति से सम्बन्धित समस्याओं की ओर विशेष ध्यान आकर्षित किया। उनकी गतिविधियों ने भारतीय महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए वातावरण और प्रेरणा प्रदान की। अब हम महिला उद्धार की दिशा में योगदान देने वाले कुछ अग्रणीय सुधार सुधारकों की चर्चा करेंगे।[1]

व्यक्तिगत समाज सुधारक

राजा राममोहन राय - उन्होंने सती प्रथा के उन्मूलन के लिए कार्य किया और वे महिला उद्धार आन्दोलन के सबसे अग्रणीय व्यक्तित्व थे। उन्होंने उन अत्याचार-पीड़ित महिलाओं के बारे में लिखा, जिन्हें "रस्सियों से बाँधकर बलात् चिता पर बैठाया जाता था, जिससे कि वे अपने पति के साथ जलकर राख हो जाएँ।"[2] राजा राममोहन राय के योगदान की हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (1820-91)- वे बंगाल के एक अन्य प्रमुख समाज सुधारक थे, जिन्होंने नारी शिक्षा को अत्यधिक बढ़ावा दिया। वे विधवा पुनर्विवाह के प्रबल समर्थक और बहु-पत्नी प्रथा के उग्र विरोधी थे। उन्होंने हिन्दू विधवाओं द्वारा पुनर्विवाह करने को कानूनी मान्यता देने और बहुपत्नी प्रथा को गैर-कानूनी घोषित करने के लिए ब्रिटिश सरकार से कानून पास करने के लिए निवेदन किया। इसके लिए उन्होंने भारतीय विधान परिषद् एवं ब्रिटिश सरकार को प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। विद्यासागर के प्रयासों के परिणामस्वरूप 1856

* **विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, जिला- देवघर (झारखण्ड)**

में हिन्दू विधवा पुनर्विवाह कानूर पारित किया गया। स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए उन्होंने बंगाल में अनेक बालिका विद्यालय स्थापित किए। वे ड्रिंकवाटर बेंथ्यून द्वारा स्थापित हिन्दू कन्या विद्यालय के साथ भी बहुत घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित थे।

कन्दुकूरी वीरेसालिंगम् पाँतलु (1848-1919)- समकालीन मद्रास प्रान्त के एक तेलुगु ब्राह्मण निवासी पाँतलु दक्षिण भारत में महिला उद्धार आन्दोलन के सबसे समाज सुधारक थे। उन्होंने विवेकवर्धिनी (सामाजिक जागरूकता जाग्रत करनेवाली पत्रिका) प्रकाशित की, 1874 में प्रथम महिला विद्यालय स्थापित किया और उनके सामाजिक सुधार कार्यक्रम में विधवा पुनर्विवाह और स्त्री शिक्षा को सबसे अधिक महत्व दिया गया। 1878 में उन्होंने सामाजिक सुधार समिति की स्थापना की, जिसने नाच-विरोधी आन्दोलन (उत्सवों पर किराए की नर्तकियों से नृत्य कार्यक्रम आयोजित करने के विरूद्ध) चलाया।[3]

महादेव गोविन्द रानाडे (1842-1901)- रानाडे और उनकी पत्नी रमाबाई ने महिला उद्धार कार्यक्रम के लिए महान योगदान प्रदान किया। 1869 में रानाडे विधवा पुनर्विवाह समिति में शामिल हो गए और विधवा पुनर्विवाह एवं स्त्री शिक्षा को बढ़ावा दिया तथा बाल विवाह का विरोध किया। उन्होंने राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन की स्थापना की, जो सामाजिक सुधारों की दिशा में अग्रणीय संगठन बन गया।

पण्डिता रमाबाई (1858-1922)- स्त्री शिक्षा क्षेत्र में अविस्मरणीय योगदान करने और महिला अधिकारों की एक क्रान्तिकारी योद्धा के रूप में उन्हें याद किया जाता है। उन्होंने विधवाओं की शिक्षा के लिए बम्बई में शारदा सदन और पुणे के निकट मुक्ति नामक संस्थाओं की स्थापना की। विधवाओं की शिक्षा के लिए उन्होंने भारत में पहली बार प्रयास किया, जो उनका महानतम् योगदान था।

ढोंडो केशव कर्वे (1858-1962)- महिलाओं के उद्धार के लिए सर्वाधिक लम्बे समय तक और सबसे अधिक कार्य करने वाले महानतम् समाज सुधारक के रूप में उन्होंने अविस्मरणीय योगदान दिया। कर्वे ने विधवा पुनर्विवाह को प्रोत्साहन दिया पुणे में अनके महिला विद्यालयों और विधवा-गृहों की स्थापना की। उनके इन विद्यालयों के पाठ्यक्रमों का उद्देश्य युवा महिलाओं को आत्मनिर्भर एवं अपनी आजीविका अर्जित करने के योग्य बनाना था। कर्वे का मानना था कि "विधवाओं को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे कि वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो सकें और अपने बारे में सोचने के लिए हो सकें।" 1916 में उन्होंने प्रथम महिला विश्वविद्यालय की भी स्थापना की।

गंगाबाई (माताजी महर्षि तपस्विनी के नाम से प्रख्यात)- वे दक्षिण भारतीय महिला थी, जो हिन्दू धार्मिक एवं नैतिक सिद्धान्तों के अनुरूप महिला शिक्षा का प्रसार करने के उद्देश्य से कलकत्ता में आकर बस गईं। पण्डिता रमाबाई के विचारों के विपरीत गंगाबाई का विश्वास था कि हिन्दू समाज को उसके अन्दर से पुनर्जीवित किया जाए। महारानी तपस्विनी ने 1893 ई0 में कलकत्ता में महाकाली पाठशाला की स्थापना की,

जिसे अपनी अनेक शाखाओं के साथ "महिला शिक्षा को विकसित करने का विशुद्ध भारतीय प्रयास" कहा जाता है।

बहन सुब्बलक्ष्मी (1886-1969)- वे मद्रास प्रेसीडेंसी की प्रथम हिन्दू विधवा थीं, जिन्होंने स्नातक स्तर तक शिक्षा ग्रहण की। उन्हें समाज द्वारा तिरस्कृत बाल विधवाओं के प्रति अत्याधिक सहानुभूति थी। अतः वे उनका समाज की सम्मानित एवं उपयोगी सदस्यों के रूप में विकास करना चाहती थीं समकालीन मद्रास प्रान्त में 5 से 15 वर्ष की आयु की 22,000 बालिका विधवाएँ थीं, जिनमें अनेक ब्राह्मण थीं। ऐसी विधवाओं के लिए सुब्बलक्ष्मी ने विधवा-गृहों, महिला विद्यालय और एक अध्यापिका प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की। उन्होंने अठारह वर्ष तक की आयु की बालिका विधवाओं के लिए आई.सी.सी. हॉउस नामक विद्यालय, वयस्क विधवाओं के लिए शारदा विद्यालय नामक एक हाई स्कूल और वयस्क विधवाओं के लिए एक आवासीय विद्यायल की स्थापना की। सुब्बलक्ष्मी भारत महिला संघ (Women's India Association) और अखिल-भारतीय महिला सम्मेलन All-India Women's Conference) के साथ भी घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध थीं और उन्होंने बाल विवाह निषेध कानून के समर्थन में सक्रिय रूप से काम किया।[4]

महिलाओं के संगठन- महिलाओं के उद्धार के लिए किए गए आन्दोलनों और महिलाओं में शिक्षा प्रसार के परिणामस्वरूप अनेक महिला संगठनों की स्थापना हुई, जो महिलाओं के अपने विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बने। इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण संगठन इस प्रकार थेः-

भारत महिला परिषद्- महिलाओं से सम्बन्धित सामाजिक विषयों पर विचारमंच के रूप में राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन द्वारा इसे गठित किया गया।

आर्य महिला समाज- जस्टिस रानाडे की पत्नी रमाबाई ने नवशिक्षित महिलाओं को प्रश्रय प्रदान करने के लिए इस संगठन की स्थापना की।

स्त्री जरथोस्टी मण्डल- यह पारसी महिलाओं का संगठन था, जो महिलाओं के लिए प्रशिक्षण मंच का काम करता था। इसकी सदस्याएँ विविध प्रकार की गतिविधयों में काफी सक्रिय थीं।

भारत स्त्री महामण्डल- 1910 में इलाहाबाद में सरला देवी चौधरानी ने इसकी स्थापना की। महिलाओं के समान हितों को बढावा देने के लिए यह भारतीय महिलाओं का प्रथम स्थायी संगठन था। महामण्डल के नेता पर्दा को महिला शिक्षा के मार्ग में सबसे बड़ा रोड़ा मानते थे और उसकी दृष्टि में महिलाओं के उद्धार के प्रमुख मुद्दे थे- महिला शिक्षा, बाल विवाह और परिवार में महिलाओं की स्थिति।

भारतीय महिला का मण्डल (The Women's Indian Association)— 1915 में आयरिश थियोसॉफिस्त एवं नारी आन्दोलनकर्त्री डॉर्थी जिनराजदास ने इसकी स्थापना की। इसकी सदस्यता भारतीयों और यूरोपियनों, दोनों के लिए खुली हुई थी। श्रीमती एनी विसेंट इसकी प्रथम अध्यक्षा बनीं। इस मण्डल ने

महिला शिक्षा के क्षेत्र में प्रमुख रूप से कार्य और इसकी शाखाओं ने साक्षरता, सिलाई और प्राथमिक चिकित्सा की शिक्षा के लिए प्रौढ़ कक्षाएँ स्थापित कीं। यह मण्डल प्रारम्भ से ही राजनीतिक रूप से बहुत सक्रिय था और इसने महिलाओं को मतदान का अधिकार प्रदान करने के लिए भारत विषयक सचिव माँटेग्यू के पास 1917 में एक शिष्टमण्डल भेजा। इसने विधवागृहों की भी स्थापना की। इसके द्वारा प्रकासित स्त्री धर्म नामक पत्रिका में महिलाओं से सम्बन्धित घटनाओं के समाचार, मण्डल की शाखाओं की गतिविधियों की रपट और महिलाओं की स्थिति से सम्बन्धित लोख प्रकासित किए जाते थे।[5]

भारतीय महिलाओं की राष्ट्रीय परिषद् (The National Council of Women for India)— अंतर्राष्ट्रीय महिला परिषद् से सम्बद्ध इस अखिल भारतीय संगठन की स्थापना 1925 में की गई। इसके संचालन में (दोराब टाटा की पत्नी) मेहरबाई टाटा की प्रमुख भूमिका रही। परन्तु विशिष्टवर्गीय महिलाओं की प्रतिनिधित्व करने के कारण, परिषद विकसित और प्रमुख राष्ट्रीय संगठन नहीं बन सकी।[6]

अखिल-भारतीय महिला सम्मेलन (All-India Women's Conference - AIWC)— यह सबसे महत्त्वपूर्ण और धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण वाला विशुद्ध भारतीय संगठन था। मार्गरेट कंजिस और सम्मेलन से सम्बन्धित अन्य महिलाओं के सहयोग से जनवरी 1927 में पुणे में इसका प्रथम सम्मेलन हुआ। सम्मेलन ने स्त्री शिक्षा, बाल विवाह और पर्दा जैसे महत्तपूर्ण विषयों पर चर्चाएँ कीं। 1928 में अखिल-भारतीय महिला सम्मेलन के शिक्षा सुधार कार्यक्रम का विचार था कि जब तक सामाजिक कुप्रथाएँ दूर नहीं हो जातीं तब तक महिलाओं की शैक्षिक प्रगति नहीं हो सकती। अखिल-भारतीय महिला सम्मेलन ने महिला शिक्षा के प्रश्न को सर्वप्रथम प्राथमिकता प्रदान की और बाद में बाल विवाह और पर्दा जैसी सामाजिक कुप्रथाओं, जो महिलाओं की शिक्षा के मार्ग में बाधक थे, के विरूद्ध संघर्ष छेड़कर अपनी गतिविधयों का विस्तार किया। 1940 के दशक तक अखिल-भारतीय महिला सम्मेलन, महिलाओं का प्रतिनिधित्व करने वाला सर्वप्रथम बन गया। 1941 में सम्मेलन ने रोश्नी नामक पाक्षिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया और 1946 में केन्द्रीय कार्यालय की स्थापना की। इसने बाल विवाह निषेद कानून या शारदा एक्ट के पक्ष में व्यापक जनमत तैयार किया। जब कुछ मुसलमान नेताओं ने कहा कि संशोधित शारदा एक्ट की परिधि से मुसलमानों को बाहर रखा जाए, तो अखिल भारतीय महिला सम्मेलन ने इस आधार पर इस विचार का डटकर विरोध किया कि वह भारत की समस्त महिलाओं का प्रतिनिधित्व करता है। इस विचार के समर्थन में कुछ मुसलमान महिला सदस्याएँ आगे आईं और उन्होंने प्रतिवेदन प्रस्तुत करके शारदा एक्ट का समर्थन किया।[7]

अखिल-भारतीय महिला सम्मेलन की स्थापना के साथ दो अन्य महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुई। सर्वप्रथम, 1927 में मुथुलक्ष्मी रेड्डी को मद्रास विधान परिषद् का सदस्य मनोनित किया गया, जो भारत की प्रथम महिला विधायिका बनीं। द्वितीयतः, भारत के विभिन्न महिला संगठनों ने महिलाओं को मतदान का अधिकार प्रदान करने के लिए अभियान प्रारम्भ किया। परन्तु उनके इन प्रयासों को बहुत सीमित सफलता

मिली और 1935 के भारत सरकार अधिनियम में महिलाओं को मतदान का बहुत सीमित अधिकार प्रदान किया गया।

संदर्भ :

1. बिपिन चन्द्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, (1995), क. न. पनिक्कर, सुचेता महाजन, पृ. 164, 165, 166
2. कांग्रेस सोशलिस्ट, 11 दिसंबर, 1937
3. दादा भाई नौरोजी, पॉवर्टी इन इंडिया, पृ. 611
4. वही.
5. बृज नारायण, इंडिया इकोनामिक लाइफ, पृ. 56, 57
6. एम एस जैन, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. 267
7. बी एल ग्रोवर यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. 472

राष्ट्रीय शिक्षा नीति और मीडिया शिक्षा

डॉ. संजीव कुमार*

ssanjeevmzp@gmail.com

सारांश –

डेनिस मैक्विल के शब्दों में 'मीडिया समाज परिवर्तन की यंत्र शक्ति है' और यह दौर इन शब्दों के लिए सबसे उपर्युक्त है। लोकतंत्र के चार स्तंभों में से एक मीडिया को सबसे निचले क्रम में माना जाता है लेकिन आज वह सबसे पहले पायदान पर खड़ा है। राजनीति, सामाजिक परिवर्तन, असामनता इन सब पर सबसे बड़ी जिम्मेदारी मीडिया की है परंतु विज्ञापन के भार में ऐसा देखने को नहीं मिलता। समाज में जब भी कोई बड़ा परिवर्तन हो रहा होता है तब हम मीडिया की तरफ देखते हैं। हर साधारण आदमी मीडिया से प्रभावित है, ऐसे में इसकी नैतिक जिम्मेदारी और भी ज्यादा बढ़ जाती है।

परन्तु ऐसे दौर में भी भला हमारी सामाजिक संरचना में यह विषय अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से कैसे पिछड़ सकता है ? आज हर कोई पत्रकार बना घूम रहा है। फिर चाहे वह शिक्षित हो अशिक्षित हो या फिर अप्रशिक्षित ही क्यों न हो। पत्रकारिता के कुछ मापदंड है, कुछ नीतियाँ है, और ढेर सारी जिम्मेदारियां क्या ये पत्रकार इन सबको समझते हैं ? हम समझ सकते हैं की भारतीय पत्रकारिता का इतिहास क्रांतिकारी गतिविधियों से आरम्भ हुआ था जिसमें प्रशिक्षण का कोई तर्क नहीं था फिर भी आज वे हमारे नैतिक पत्रकार है परन्तु आज जब पत्रकारिता एक विशाल व्यवसाय बन चूका है तो फिर क्यों नहीं इसके सभी मापदंडों का भलीभांति पालन होना चाहिए।

बीज शब्द –शिक्षा, मीडिया, समाज, नीति, रोजगार.

शोध विधि –वैयक्तिक अध्ययन एवं द्वितीयक आकड़ों का प्रयोग.

प्रस्तावना –

कुछ दिनों पहले **'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : भारत में पत्रकारिता और जनसंचार शिक्षा की भविष्य की दिशा'** विषय पर बोलते हुए इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के सदस्य सचिव डॉ सच्चिदानंद जोशी ने भारतीय जन संचार संस्थान (आईआईएमसी) द्वारा आयोजित राष्ट्रीय वेबिनार में कहा कि मीडिया शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए मीडिया एजुकेशन काउंसिल की आवश्यकता है। इसकी मदद से न सिर्फ पत्रकारिता एवं जनसंचार शिक्षा के पाठ्यक्रम में सुधार होगा, बल्कि मीडिया इंडस्ट्री की जरूरतों के अनुसार पत्रकार भी तैयार किये जा सकेंगे।

* **सहायक प्राध्यापक, श्री शंकराचार्य प्रोफेसनल यूनिवर्सिटी. भिलाई (छ.ग.)**

डॉ जोशी ने कहा कि नई शिक्षा नीति में कहीं भी मीडिया या पत्रकारिता शब्द का जिक्र नहीं है। आज मीडिया के प्रभुत्व से भला कौन वाकिफ नहीं है फिर भी हमारी नई शिक्षा नीति में इसके विषय में कोई विचार न होने पर इस शिक्षा नीति पर सवाल उठना लाजमी है।[1]

भारत में बहुत ही कम शिक्षा के ऐसे विषय है जो व्यापक स्तर पर युवाओं को रोजगार मुहैया कराते हैं। यहाँ डाक्टरी, इंजीनियरी, वकालत, फौज के पश्चात् यदि कोई और विषय युवाओं को अपनी तरफ आकर्षित करता है तो वह मीडिया का क्षेत्र है, यही वजह है कि वर्तमान में जो हमारी शैक्षणिक नीति बनाई गयी है उसमें रोजगार सृजन को ध्यान में रखकर ही इसकी रूपरेखा को निर्मित किया गया है। आज हम देख सकते हैं कि ज्यादातर शिक्षित नवयुवक जो बेरोजगार है जिनके हाथ में डिजिटल माध्यम का साधन है वह कही न कही सूचना के कार्य से जुड़कर अपना जीवन यापन कर रहा है, पर कभी – कभी हमारे समक्ष ऐसी घटनाएँ भी देखने को मिल रही है जब मीडिया शिक्षा की कमी की वजह से कुछ व्यक्ति ऐसे कार्य कर गुजरते हैं जिनसे उन्हें क़ानूनी अड़चनों का सामना भी करना पड़ता है, दूसरी तरफ एक प्रशिक्षित व्यक्ति के जीवन यापन पर भी यह एक तरह से घात का काम करता है।

डॉ के. कस्तूरीरंगन की समिति द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 देश की तीसरी शिक्षा नीति है। इसके पूर्व 1968 में स्वतंत्र भारत ने अपना प्रथम शिक्षा नीति लागू किया था, इस नीति का ध्येय सभी को शिक्षित करना था वही दूसरी शिक्षा नीति 1986 का उद्देश्य सामाजिक, नैतिक, व्यावसायिक ज्ञान को सशक्त करना था।

आज हमारे देश में तीसरी शिक्षा नीति 2020 स्थापित की जा चूँकि है। यह शिक्षा नीति 2030 की परिस्थिति एवं वैश्विक शिक्षा एजेंडा को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है। इसका प्रमुख उद्देश्य है भारत में सभी को समान और गुणवत्तायुक्त शिक्षा देना है, ताकि सभी भारतीय नागरिकों में राष्ट्र नैतिकता, सहानुभूति, मानवीय मूल्य तथा कौशल की शिक्षा प्रशस्त हो सके। परन्तु इस शिक्षा नीति में कही भी मीडिया शिक्षा का जिक्र नहीं है जो कि मीडिया विषय के प्रति हमारी उदासीनता का ही प्रतीक है।

इस शिक्षा नीति में कहीं भी मीडिया शिक्षा के विषय में अलग से परिचर्चा नहीं की गई है। ध्यातव्य है कि मीडिया जनसंचार का ही एक अंग है। मीडिया में सूचना के वे सभी आयाम जो जन जागरण का कार्य करते हैं आज उन्हें ही मीडिया कहा जाता है, जैसे न्यूज़ चैनल, समाचार पत्र, समाचार पत्रिका, विज्ञापन, सोशल मीडिया इत्यादि। परन्तु वर्तमान शिक्षा नीति में ऐसी किसी विषय की शिक्षा की बात नहीं की गई है लेकिन नाट्य कला, फिल्म और संगीत शिक्षा का यहाँ जिक्र किया गया है।

मीडिया शिक्षा का इतिहास -

आज हमारे समक्ष जो मीडिया का स्वरूप है वह यूरोपीय मीडिया का एक विकसित रूप है।1450 ईसवीं में जोहन गुटनबर्ग द्वारा मुद्रण कला विकसित होने पश्चात् विश्व में एक नई शक्ति का आगाज़ हुआ जिसने

दुनिया का इतिहास बदलने में सबसे बड़ी भूमिका निभाई। 1621 ईसवीं में ब्रिटेन में कोरान्तो नाम से पत्र का एक स्वरूप तैयार हुआ। वही अमेरिका में 1704 में पहला समाचार पत्र बस्तान न्यूज़ लेटर निकला। भारत में 1780 में पहला समाचार पत्र प्रकाशित हुआ।

1865 में अमेरिकन राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन की जब हत्या की गई तब रायटर ने अपनी समाचार शक्ति से सबको आश्चर्य चकित कर दिया था।उसके पश्चात् प्रथम विश्वयुद्ध की घटना का रेडियो द्वारा प्रसारण ने सूचना शक्ति को और प्रशस्त किया और फिर इस तरह इसकी शक्ति से दुनिया ने बड़े – बड़े बदलाव देखे जिनमें भारत की स्वतंत्रता में मीडिया की एक बड़ी भूमिका हमें देखने को मिली।

जब दुनिया में पत्र, पत्र संस्थान, रेडियो ने अपना प्रभाव दिखाना आरंभ कर दिया तब अमेरिका ने सर्वप्रथम इसे एक शैक्षणिक विषय के रूप में औपचारिक शुरुआत की। 1910 में अमेरिका के विस्कोसिन विश्वविद्यालय में विश्व का प्रथम मीडिया शिक्षा आरंभ हुई। भारत में 1920 में अडियार विश्विद्यालय में मीडिया स्नातक शिक्षा की स्थापना हुई, उसके पश्चात् 1930 में अलीगढ विश्विद्यालय में पत्रकारिता का आरंभ किया गया। इसके पश्चात् आज देश में सैकड़ों मीडिया संस्थान, विश्वविद्यालय अनवरत मीडिया शिक्षा देने का कार्य कर रहे हैं।[2]

वर्तमान में मीडिया शिक्षा –

आज पत्रकारिता मिशन से कमीशन की ओर पहुँच चूँकि है। मीडिया की हर विधा की आज पढ़ाई का प्रबंध है। वर्तमान समय में छः प्रकार से आज मीडिया की शिक्षा हमारे युवा हासिल कर कमीशन की ओर बढ़ रहे हैं। मीडिया को समाज विकास का चौथा स्तम्भ माना जाता है परन्तु यह विषय भी आम विषयों की भांति कम्पनी का मानक मूल्य प्राप्त करने के लिए सब कुछ करने को तैयार खड़ा है।

आज हमारे युवाओं को मीडिया अध्ययन के लिए छः प्रकार के संस्थान मौजूद है –

1. राष्ट्रीय विश्वविद्यालय
2. राजकीय विश्वविद्यालय
3. निजी विश्वविद्यालय
4. डीम्ड विश्वविद्यालय
5. ओपन विश्वविद्यालय
6. मीडिया संस्थान [3]

आज ये सभी विश्वविद्यालय 12 वीं के पश्चात् हर तरह की डिग्रियां देने को तैयार है। इन विश्वविद्यालयों में डिप्लोमा से लेकर शोध तक करवाएं जा रहे हैं।पर रोजगार आपके व्यक्तिगत व्यवहार पर निर्भर करता है।

मीडिया शिक्षा की आवश्यकता –

राज्यसभा टी.वी.के संपादक उर्मिलेश जी कहते हैं कि 'भारत का मीडिया दुनिया का सबसे बड़ा मीडिया है। यहाँ मीडिया का व्यवसाय साठ हजार सात सौ करोड़ का है।देश में 84000 समाचार पत्र तथा 300 से ज्यादा समाचार चैनल है। जिनका संचालन 108 उद्योग कम्पनिया करती है।[4]

इतनी विशाल सामाजिक – व्यावसायिक संस्था जिसका जन्म समाज को निष्पक्ष सम्मान दिलाने हेतु हुआ था। प्रारंभ में लोग बगैर किसी मीडिया शिक्षा के प्रेस और पत्रकारिता का कार्य कर रहे थे। उन दिनों इसका उदेश्य सिर्फ समाज सेवा हुआ करता था, परन्तु आज़ादी पश्चात् जब इस समाज सेवा को लोगों ने जीवनयापन का साधन बना लिया और फिर विज्ञापन ने इसे अपनी जाल में जकड़ लिया तब यह एक व्यावसायिक संस्था बन गयी। और जब व्यवसाय तथा विज्ञापन इसमें शामिल हुआ तो व्यापारियों तथा राजनेताओं ने इसमें पिया लगाना आरंभ कर दिया और फिर ऐसे में व्यवसाय को मजबूत बनाने के लिए उन्हें प्रशिक्षित मीडियाकर्मियों की जरूरत पड़ने लगी। मीडिया शिक्षा की आवश्यकता को दो तरह से समझा जा सकता है –

- सामाजिक नैतिकता
- रोजगार वाहक

सामाजिक नैतिकता

हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय की प्रो. कंचन मलिक ने अपने संबोधन में कहा कि अगर हम नई शिक्षा नीति का गहन अध्ययन करें, तो हम पाएंगे इसमें कई महत्वपूर्ण मुद्दों पर जोर दिया गया है। उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति आत्मनिर्भर बनने पर जोर देती है। इसे हम इस तरह समझ सकते हैं, कि 'जो चीज आपको चैलेंज करती है, वही आपको बदलाव करती है।' प्रो. मलिक ने कहा कि जनसंचार शिक्षा का प्रारूप बदलना हमारे लिए बड़ी चुनौती है, लेकिन राष्ट्रीय शिक्षा नीति से प्रेरणा लेकर हम यह कर सकते हैं। उन्होंने कहा कि मीडिया शिक्षा का काम सिर्फ छात्रों को ज्ञान देना नहीं है, बल्कि उन्हें इंडस्ट्री के हिसाब से तैयार भी करना है। मीडिया शिक्षकों को इस विषय पर ध्यान देना होगा।[5]

आज जब किसी समाचार पत्र में अथवा न्यूज़ चैनल पर कोई खबर दिखाई जाती है तब हमारे देश के असंख्य लोग इसे देववाणी समझते हैं। उन्हें लगता है कि यहाँ जो दिखाई देता है वह शत प्रतिशत सत्य है, और वे उसे ही अपने तर्क तथा जीवन का आधार मानते हैं। यह बात मीडिया तथा राजनेता एवं व्यापारी तथा बौद्धिक समाज बखूबी समझता है। चूँकि वस्तु बेचने के लिए, सत्ता के लिए एवं ख्याति के लिए जनसंख्या समर्थन की आवश्यकता पड़ती है। चाहे वह जनसंख्या मुर्ख ही क्यों न हो हमारा हित उनकी संख्या में छुपा होता है, यह हम जान रहे हैं इसलिए आज मीडिया का धड़ल्ले से दुरपयोग किया जा रहा है जिसे एक नैतिक शिक्षा द्वारा ही रोका जा सकता है।

लोकतांत्रिक देशों में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के क्रियाकलापों पर नजर रखने के लिये मीडिया को ''चौथे स्तंभ'' के रूप में जाना जाता है। 18वीं शताब्दी के बाद से, खासकर अमेरिकी स्वतंत्रता आंदोलन और फ्राँसीसी क्रांति के समय से जनता तक पहुँचने और उसे जागरूक कर सक्षम बनाने में मीडिया ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मीडिया अगर सकारात्मक भूमिका अदा करें तो किसी भी व्यक्ति, संस्था, समूह और देश को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक रूप से समृद्ध बनाया जा सकता है।

वर्तमान समय में मीडिया की उपयोगिता, महत्त्व एवं भूमिका निरंतर बढ़ती जा रही है। कोई भी समाज, सरकार, वर्ग, संस्था, समूह व्यक्ति मीडिया की उपेक्षा कर आगे नहीं बढ़ सकता। आज के जीवन में मीडिया एक अपरिहार्य आवश्यकता बन गया है। अगर हम देखें कि समाज किसे कहते हैं तो यह तथ्य सामने आता है कि लोगों की भीड़ या असंबंद्ध मनुष्य को हम समाज नहीं कह सकते हैं। समाज का अर्थ होता है संबंधों का परस्पर ताना-बाना, जिसमें विवेकवान और विचारशील मनुष्यों वाले समुदायों का अस्तित्व होता है।

रोजगार वाहक –

भारत में एक उच्च विकसित उच्च शिक्षा प्रणाली है जो मानव रचनात्मक और बौद्धिक प्रयासों के लगभग सभी पहलुओं में शिक्षा और प्रशिक्षण की सुविधा प्रदान करती है। कला और मानविकी, प्राकृतिक, गणितीय और सामाजिक विज्ञान, इंजीनियरिंग, दवा, दंत चिकित्सा, कृषि, शिक्षा, कानून, वाणिज्य और प्रबंधन, संगीत और प्रदर्शन कलाएँ; राष्ट्रीय और विदेशी भाषाएँ, संस्कृति, संचार आदि। अपने आकार और विविधता में, भारत चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी उच्च शिक्षा प्रणाली है। [6]उच्च से उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् भी आज रोजगार की गारंटी नहीं है। मीडिया से इतर विषयों के अनगिनत व्यक्ति आपको बेरोजगार दिखेंगे परन्तु मीडिया के ज्यादातर छात्र आपको रोजगार में मिलेंगे. ऐसे में जब कोई दुसरे विषय का विद्यार्थी जिसे मीडिया की नैतिक मूल्यों के विषय में जानकारी नहीं होती तब उसके द्वारा संचार में मानको का खतरा बढ़ जाता है।

निष्कर्ष –

जनसंचार के माध्यम आज नित-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। एक दस वर्ष का बच्चा भी आज समाज में अपनी पहचान बना रहा है, जाहिर है यह अभिव्यक्ति की आज़ादी का विषय है परन्तु यह मीडिया नहीं है; लेकिन जो अपने संचार माध्यम से सामाजिक सूचना देना चाहता है उसका प्रशिक्षित होना अनिवार्य होना चाहिए. इसके लिए निम्न मापदंड किए जा सकते हैं -

1. वही व्यक्ति मीडिया का प्रतिनिधित्व करें जिसके पास उससे जुडी डिग्री हो। यह नियम सख्ती से लागू किया जाय बिलकुल मेडिकल, कानून, एवं इंजीनियरिंग नियमों की भांति।

2. मीडिया की शिक्षा को माध्यमिक शिक्षा से जोड़ा जय ताकि विद्यार्थिओं को ज्यादा समय मिल सके इसकी नैतिकता को समझने के लिए। इससे रोजगार में भी वृद्धि होगी तथा पत्रकार नैतिक भी होंगे।

3. मीडिया संस्थान खोलने हेतु संस्थानों के लिए मानक तय किए जाने की आवश्यकता है। बगैर मीडिया सामग्री के संस्थान को मान्यता न दी जाए।

4. इसमें दाखिला प्राप्त करने हेतु उच्चस्तरीय राष्ट्रीय परीक्षा की व्यवस्था करने की आवश्यकता हो जहाँ अध्ययन के पश्चात् उन्हीं सम्मानित नौकरी तथा उचित मूल्य मिल सके। ऐसा करने से वे खुद को शोषण से मुक्त रख पाएंगे जिससे उनकी नैतिकता बनी रहेगी, तभी मुक्त होकर वह निष्पक्ष समाज सेवा कर पाएंगे।[7]

संदर्भ :-

[1].https://www.amarujala.com/india-news/media-education-council-is-necessary-to-enhance-the-quality-of-media-education-dr-sachchidanand-joshi

[2] . डॉ जैन. संजीव कुमार. *पत्रकारिता सिद्धांत और स्वरूप*. कैलाश पुस्तक सदन भोपाल. पृ. -3

[3] . https://www.hmoob.in/wiki/Media_literacy

[4] .कुमार, संजय. *मीडिया में दलित*. रश्मि प्रकाशन. पृ. -18

[5]. https://www.amarujala.com/india-news/media-education-council-is-necessary-to-enhance-the-quality-of-media-education-dr-sachchidanand-joshi?pageId=1

[6] डॉ.वाजा, इरोज. (2020). *उच्च शिक्षा में मास मीडिया की भूमिका*. वेदांत प्रकाशन. पृ.-7

[7] https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_final_HINDI_0.pdf

लोक जागृति की चिंता : भोजपुरी नाटक

संतेश कुमार राजु*

raju.upadhyay151@gmail.com

सारांश:-

भोजपुरी नाटकों की परंपरा का अवलोकन करने पर एक प्रवृत्ति सहज ही दिखाई देती है कि भोजपुरी नाटक कालक्रम की दृष्टि से जितने नए हैं विषय वस्तु की दृष्टि से उतने ही आधुनिक भी हैं। अपने प्रारंभ से ही युगीन चुनौतियों को स्वीकार करते हुए और उनसे समाजिक चेतना रचते हुए अपना महत्व प्रतिपादित करते हैं। उदाहरण के लिए पहला नाटक देवाअक्षर चरित्र हिंदी और उर्दू के द्वंद के समय में लिखा गया और नागरी लिपि आंदोलन की चेतना को स्वयं में समाहित करता है। भिखारी ठाकुर के नाटक वृद्ध व्यक्तियों द्वारा बालिकाओं से विवाह करने की कुप्रथा, नाजायज संतान की समस्या, रोजगार हेतु घर से दूर जाकर जीवन यापन करने की समस्या आदि ज्वलंत विषयों को उठाते हैं इसी प्रकार राहुल सांकृत्यायन के नाटक अपनी युगीन चुनौतियों को लेकर चलते हैं तथा स्त्री समस्या और अन्य सामाजिक समस्याओं को प्रमुखता से ऊंचा स्वर प्रदान करते हैं इसी कड़ी में रामेश्वर सिंह कश्यप का नाटक लोहा सिंह जो रेडियो नाटक के रूप में बहुत विख्यात हुआ। वह भोजपुरी क्षेत्र के उभरते नौकरी सुधा मध्य वर्ग की समस्या को स्वयं की प्रगति एवं परिवार एवं समाज के पिछड़ेपन एवं द्वंद को गंभीरता से उतारता है। इसी प्रकार महेंद्र प्रसाद सिंह एवं सुरेश कांटक आदि के नाटक भी जन जागरण का धर्म नहीं तत्यागते।

प्रस्तावना :-

मनुष्य के विकाश में भाषा का विकास सबसे बड़ी क्रांति थी। भाषा ही वह बल है जिसे पाकर मनुष्य ने सम्पूर्ण चराचर जगत पर अपने विजय को सुनिश्चित किया। भाषा हीं जब मनुष्य की संचित चेतना को विभिन्न काल खंडों से प्रवाहमान रखते हुए उसकी अगली पीढ़ियों को पहुंचाने लगी एवं साथ ही आनंद का विधान भी करने लगी तब उसका नाम साहित्य हुआ। वाणी के साथ साथ अन्य माध्यमों से अभिव्यक्ति की खोज मनुष्य ने कालांतर में किया और विभिन्न प्रकार की संकीर्तन दक्षताओं से उसने भाषा का संवर्धन किया। इस विकासक्रम के अगले अध्याय के रूप में विभिन्न विधाओं का प्रणयन हुआ, जिसमें नाट्य भी एक महत्वपूर्ण विधा है। किसी के द्वारा किए गए कार्य की अनुकृति कला के मूल में रही है। नाट्य भी उसी अनुकृति का एक सुंदर और समर्थ स्वरूप है।

नाट्य अपनी विशिष्ट अभिव्यक्ति के लिए सदा समादृत रहा है और इसकी व्याप्ति प्रचुर मात्रा में सदैव रही है। भारतीय नाट्य का आद्य रूप भरतमुनि का नाट्यशास्त्र कहा जाता है। दसवीं शताब्दी के आसपास जब

* गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ

संस्कृत भाषा का क्षरण शुरू हुआ और विभिन्न लोकभाषाओं का उदय हुआ उस समय संस्कृत के नाट्य को विभिन्न भाषाओं में अपने क्षेत्रीय विशेषताओं के साथ ग्रहण किया। अमरीकी विद्वान सैल्डन पौलिक के अनुसार भारत का नाट्यशास्त्र एक दर्पण के भांति था। जो मध्य भारत में गिरकर टूट गया और जिस क्षेत्र ने उसके टुकड़े उठाकर उसमें देखने की कोशिश की उसे स्वयं का ही चेहरा नजर आया, अर्थात नाट्य का मूल तत्व एक ही स्रोत से संपूर्ण भारत में फैला और क्षेत्रीय विशिष्टताओं को समेटा हुआ अनेकानेक रूपों में प्रकट हुआ।

भारत के क्षेत्रीय भाषाओं में भोजपुरी एक महत्वपूर्ण भाषा है जिसका क्षेत्र बिहार और उत्तरप्रदेश का एक विस्तृत भूभाग है। भोजपुरी क्षेत्र में जो लोक नाट्य विधाएं पाई जाती है उनमें से धार्मिक लोकनाट्य – रामलीला। जातीय नृत्य- नाट्य- गोंडऊं नाच, चमरऊ नाच, धोबियऊ नाच, नटुआ नाच, फरी नाच, मल्लाहों का नाच, खटिकों का नाच, कोहराऊं नाच, दुसाधों का राहु पूजा नाच, थारू नाच। स्त्रियों द्वारा अभिनीत नाट्य – डोमकच, जट-जटिन, श्यामा – चकेवा, सुगना, बागुली, हर – परौरी, गावनिहारन की नाच। स्वांग प्रधान लोकनाट्य -होली पर के स्वांग, बहुरूपिया, बसहा, दुलदुल। मनुष्येतर अन्य साधनों से अभिनीत होने वाले लोकनाट्य – कठपुतरी नाच, बंदर – भालू नाच आदि प्रमुख है।

भोजपुरी भाषा में नाटकों की परंपरा अति प्राचीन नहीं है भोजपुरी के लोकनाट्य जितने प्राचीन है भोजपुरी नाटक उतने ही अर्वाचीन। अब तक के ज्ञात नाटकों के आधार पर भोजपुरी का पहला नाटक पंडित रवि दत्त शुक्ल कृत देवाअक्षर चरित 1884 अर्थात 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक की रचना है। अतः इसे बहुत प्राचीन मानना समीचीन नहीं है भोजपुरी नाटक की जो परंपरा यहां से शुरू होती है वह आगे भिखारी ठाकुर राहुल सांकृत्यायन, गोरखनाथ चौबे, रामेश्वर सिंह कश्यप, महेंद्र प्रसाद सिंह सुरेश कांटक एवं अन्य नाटककार आदि इत्यादि से बल प्राप्त करती हुई प्रतिष्ठित होती है।

उदाहरण के लिए पहला नाटक देवाअक्षर चरित्र हिंदी और उर्दू के द्वंद के समय में लिखा गया और नागरी लिपि आंदोलन की चेतना को स्वयं में समाहित करता है। इसका रचना काल 1884 ई. है। यह एक हास्य रस प्रधान नाटक है। डॉ ग्रियर्सन ने इस नाटक का उल्लेख 'लिंगविस्तिक सर्वे ऑफ इंडिया' में किया है। परंतु, संभवतः उन्हें यह नाटक देखने को नहीं मिला था। इसकी एक जीर्ण शीर्ण प्रति जो नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के आर्य भाषा पुस्तकालय में है, उसी के आधार पर डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने इस नाटक का परिचय प्रस्तुत किया है। नाटक का नाम देवाक्षरचरित है जिसका मतलब देवनागरी लिपि है। देवनागरी लिपि के विकासक्रम का बड़ी बारीकी के साथ वर्णन हुआ है। इस नाटक का नेता देवाक्षर अपना परिचय देता है।

संस्कृत देवन सुअन हम, देवक्षर मम नाम।
बंग देश आदिक रमत, आई गए एही ठाम।
श्रवण सुन्यौ या नगर कौ, हकीम परम उदार।
जौ पहुंचावाहु तासु ढिंग, मनिहं बड़ उपकार।

नागरी लिपि के प्रचार – प्रसार हेतु लिखा गया यह नाटक नागरी लिपि के महत्व को प्रतिपादित करता है। जिस समय इस नाटक की रचना हुई थी, उस समय फारसी लिपि में उर्दू भाषा में सरकारी कामकाज होता था। हिंदी भाषा और नगरी लिपि को हेय दृष्टि से देखा जाता था। इस नाटक के माध्यम से सरकारी कामकाज में देवनागरी लिपि को स्थान देने की अपील की गई है। अपनी भाषा और लिपि के माध्यम से जब जनता को शिक्षा दी जाएगी और उसी में काम काज संपन्न किया जाएगा तभी शिक्षा का प्रचार प्रसार संभव है। लेखक ने लिखा है –

'इबतदाई तालीम कभी कामयाब नहीं हो सकती जब तक नागरी अक्षर कचहरियों में न जारी किये जाय।'भिखारी ठाकुर के नाटक वृद्ध व्यक्तियों द्वारा बालिकाओं से विवाह करने की कुप्रथा। बेटी – वियोग नाटक है, जिसमें जिसमें पिछड़े हुए गांव की सामाजिक, आर्थिक, स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। इसकी कथावस्तु एक पिछड़े क्षेत्र के गांव की है। उस गांव की आर्थिक और सामाजिक स्थिति अत्यंत निम्न स्तरीय है। नाजायज संतान की समस्या, रोजगार हेतु घर से दूर जाकर जीवन यापन करने की समस्या। परिवार की आर्थिक विपन्नता के कारण बिदेसी अत्यंत विचलित रहता है। इस विपन्ता को दूर करने का कोई उपाय उसके पास नहीं था। साथ ही गांव के अनेक युवक और अधेड़ कलकता , आसाम आदि स्थानों पर जाकर मेहनत – मजूरी करके धनार्जन करते थे और फिर घर आते थे। अपने आसपास के लोगों को देखकर बिदेसी के मन में भी उमंग उठती थी कि वह कलकत्ता या अन्य किसी शहर में जाकर रोजी – रोटी का प्रबंध करे। इस सोच के फलस्वरूप वह अपनी पत्नी से कलकत्ता जाने का प्रस्ताव रखता है, परंतु पत्नी उसे बार -बार मना करती है, परंतु बिदेसी नहीं मानता है और चुपके से कलकत्ता भाग जाता है। "विधवा विलाप" नारी समस्या पर आधारित है। ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न आर्थिक कारणों से मजबूरीवश कमसिन लड़कियों का विवाह बूढ़े व्यक्तियों से हो जाता था। स्थिति और परिणाम स्पष्ट है कि ऐसे बूढ़े कुछ ही दिनों बाद निःसंतन मर जाते थे और उनकी युवा विधवा समाज की उपेक्षा, अत्याचार और उपहास के लिए विवश हो जाती थीं। इस प्रकार की घटनाएं भारतीय समाज में प्रायः देखने को मिलती थीं। एक प्रकार से समाज में विधवा – विवाह प्रतिबंधित था। विधवा युवती दूसरी शादी कर नहीं सकती थी अतः उसे जीवन पर्यंत समाज की यातना सहते हुए वैधव्य जीवन बिताना पड़ता था।

"कलयुग – प्रेम" में खेती किसानी न करना, बेरोजगारी के फलस्वरूप युवकों का नगरों महानगरों में पलायन करना। नगर से बुरी आदतों को लेकर आना। नशाखोरी हर वर्ग, हर जाति, हर उम्र के लोगों में बढ़ना जिससे बीमारी उत्पन होना दिखाया गया है।

"पुत्र वध" नाटक पारिवारिक समस्याओं और पिछड़ी मानसिकता पर आधारित समस्या नाटक है। एक निर्धन सरल स्वभाव के व्यक्ति चपाट की दो पत्नियों के बीच आपसी ना मेलमिलाप की कथा रची गई है। इसमें पड़ोसी की भी भूमिका दोनों के बीच की मन मुटाव का कारण होता है। चपाट का इकलौता पुत्र अपनी छोटी मां को कुमार्ग छोड़कर सतमार्ग लाने का प्रयास करता है। परंतु उसकी सौतेली मां उसी पर दुष्चरित्रताता का आरोप लगा कर उसे जान से मार देने के लिए प्रेरित करती है।

"गंगा स्नान" धर्म आधारित सामाजिक नाटक है। गंगा स्नान के धार्मिक आस्था को कथानक बनाया गया है। ग्राम्यांचल की स्त्रियों के भीतर विकसित मानसिकता को भी अभिव्यक्त किया गया है। इस नाटक में अपने ही बेटा-पतोह के द्वारा वृद्ध मां को गंगा स्नान के मेले में कष्ट पहुंचता है। अंततोगत्वा स्थिति प्रिस्थिति ऐसी उत्तपन्न होती है और दोनों का हृदय परिवर्तन होता है, क्षमा मांग मां को ससनेह घर वापस लेकर आते हैं।

नाटक भाई विरोध ग्राम्यांचलों में जब बहुएं आ जाती हैं तब परिवार में विघटन शुरू होता है। यह विघटन कभी आपसी तालमेल के अभाव में होता है और कभी "कुटनी" के माध्यम से होता है। कुटनी के प्रभाव से परिवार में फूंट पड़ जाता है। सुखमय परिवार टूट कर बिखर जाता है।

"ननद भउजाई" का संबंध भारतीय समाज में सर्वदा रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में बाल – विवाह से उत्पन समस्या है। युवती होने पर विविध प्रकार के तानें, समाज की दुर्भावपूर्ण बातचीत झेलना पड़ता है। उसके बावजूद अखजो चारित्रिक दृष्टि से समाज में आदर्श प्रस्तुत करती है।

बिरहा बहार" धोबियों के नृत्य पर यह नाटक है। लेखक इस नाटक में धोबियों के कपड़ा धोने की प्रक्रिया का वर्णन करते हुए उसको प्रतीकात्मक रूप देते हुए आध्यात्मिकता से जोड़ दिया है।

नकल भांड़ आ नेतुआ के" यह नशा करने की आदतों के कारण पारिवारिक दुर्दशा का वर्णन किया गया है। भांड़ समाज को नशाखोरी त्यागने एवं सचेत करते हुए सत्कर्म में लगने की ओर प्रेरित करता है। और सांकेतिक रूप से स्त्रीयों में बदलते हुए फैशन की ओर ध्यान आकृष्ट करता है।

गबर घिंचोर" में कोख की समस्या दिखाया गया है। इस नाटक का उद्देश्य जन-जागरण है। परदेसियों को इससे शिक्षा लेनी चाहिए कि युवती पत्नी को घर अकेली छोड़कर बाहर कमाना नहीं जाना चाहिए।

बुढ़साला का बयान" में वृद्धों की परिवार में जो उपेक्षा और दुर्गति हो रही है, वृद्धाश्रम खोलने की पैरवी की है।

भिखारी ठाकुर के नाटकों से सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, और सांस्कृतिक परिस्थियों का अनुभव किया जा सकता है। वे अपने अधिकांश नाटकों में नारी-जीवन, नारी-मनोविज्ञान, तथा नारी समस्याओं का सूक्ष्मता से अनुशीलन करके नारी-विमर्श को बल दिया है। नशाखोरी, परिवार विघटन, बेटी बेचना जैसे तमाम कुप्रथाओं को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। भिखारी ठाकुर एक समर्थ भोजपुरी नाटककार थे। सामाज के ज्वलंत विषयों को उठाते हुए भोजपुरी नाट्य साहित्य को समृद्ध बनाया है।

इसी प्रकार पंडित राहुल सांकृत्यायन के नाटक अपनी युगीन चुनौतियों को लेकर चलते हैं। वे हिंदी साहित्य, दर्शन, बौद्ध धर्म के विद्वान पंडित थे। विज्ञान, धर्म, दर्शन, इतिहास, यात्रा, कहानी, पुरातत्व, नाटक आदि प्रयाप्त संख्या में लिखे हैं। पंडित राहुल सांकृत्यायन आजमगढ़ जिले में जन्में था उनकी मातृभाषा

भोजपुरी थी। कई भाषाओं के जानकार होने के बावजूद भोजपुरी में बात करना गौरव समझते थे। वे भोजपुरी भाषा में आठ नाटकों की रचना की, जो "तीन नाटक" और "पांच नाटक" नाम से सन् 1942 में किताब महल जीरो रोड, इलाहाबाद से प्रकाशित हुए है।

मेहरारून के दुर्दशा" पंडित राहुल सांकृत्यायन की चार अंकीय नाटक आठों नाटकों में रंगमंच पर खेला जाने वाला सबसे प्रसिद्ध नाटक है। इस नाटक में नारी उत्थान की बात रखी गई है। समाज में लड़की की उपेक्षा आरंभ से शुरू हो जाती है। उसकी शिक्षा, पारंपरिक धार्मिक कर्मकांडों में नारी को उलझा कर रखा जाता है। प्रदा प्रथा, विधवा हो जाने पर सती होने को विवश होना पड़ता था, यदि जीवित रह गए तो मौलिक अधिकार जमीन जायदाद में हक न मिलने पर बाध्य किया जाता था।

नइकी दुनिया" में धार्मिक आडंबर, जाति-पांति का भेदभाव, विश्वयुद्ध, सामूहिक खेती आदि प्रसंगों से भरा नाटक है। राजनीतिक, प्रशासनिक, सामाजिक व्यवस्था को रूस की व्यवस्था के अनुसार भारत में परिवर्तन लाने की जिरह की है। विश्व युद्ध में जर्मनी और जापान की सेना द्वारा बर्बर अत्याचार की भी आंशिक चर्चा शामिल है।

जोंक" सन् 1942 में हजारीबाग जेल रहते हुए पंडित जी ने इसकी रचना की थी। किसान, मजदूर, और शोषितों की बर्ताव की वर्णन की हैं। गरीबों का शोषण किस प्रकार समाज में हो रहा था इसे सूक्ष्मता से उद्घाटित किया गया है। इस नाटक से इन कुरीतियों को दूर कर एक आदर्श राष्ट्र की परिकल्पना प्रस्तुत की गई है। आरंभ में ही गीत है :-

हे फिकिरिया मरलस जान।
सांझ बिहान के खरची नईखे, मेहरी मारे तान।
अन्न बिना मोर लइका रोवे, का करिहें भगवान।
करजा काढि काढ़ी खेती कइलीं, खेतवे सुखल धान।
बैल बेंचि जिमदारवा के देलीं, सहुआ कहे बेइमान।

ई हमार लड़ाई" पंडित जी की आखिरी पांच नाटक सन् 1942 में प्रकाशित हुई, परंतु वर्तमान में यह उपलब्ध नही हैं। इस नाटक में द्वितीय विश्व युद्ध में शामिल होने के लिए जनता से अपील किया गया था। यह लड़ाई जन सामान्य से जुड़ी हुई थी अतः इसमें सभी को भाग लेना लेना चाहिए।

देश रक्षक" इस नाटक में बहादुर सैनिको की आपस में वार्तालाप के माध्यम से दिखाया गया है कि जब जापानी सेना बमों की वर्षा कर रही थी तब कुछ लोग पलायन कर रहे थे। ये लोग रास्ते में चलते समय जापानियों द्वारा चीन, शंघाई और हांगकांग में किए गए अमानवीय अत्याचारों का आपस में वर्णन कर रहे थे।

जपनिया राक्षस" विश्व युद्ध में जापानी सैनिकों की निर्दयता और अमानवीय अत्याचार का वर्णन इस नाटक में किया गया है।

जर्मनवा के हार निहचय" पंडित जी ने अपने कल्पना के सहारे नाटक में जर्मनी की पराजय निश्चित की है। उनकी भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। इस नाटक में किसान और मजदूर की पीड़ा का वर्णन भी हुआ है। और धुनमुन नेता" में अवसरवादी सिद्धांत विहीन नेताओं पर प्रहार किया है। पंडित राहुल सांकृत्यायन की नाटक स्त्री समस्या और अन्य सामाजिक समस्याओं को प्रमुखता से ऊंचा स्वर प्रदान करते हैं।

इसी कड़ी में रामेश्वर सिंह कश्यप का नाटक लोहा सिंह जो रेडियो नाटक के रूप में बहुत विख्यात हुआ। वह भोजपुरी क्षेत्र के उभरते नौकरी सुधा मध्य वर्ग की समस्या को स्वयं की प्रगति एवं परिवार एवं समाज के पिछड़ेपन एवं द्वंद को गंभीरता से उतारता है।

गोरखनाथ चौबे कृत "उल्टा जमाना" नाटक सामाजिक विकृतियों पर रचित है। समाज सुधार के नाम पर जो अंधेरे में रखा गया है, और जनता को गुमराह किया गया है, उस पर चोट पहुंचाया जा रहा है।

इसी प्रकार महेंद्र प्रसाद सिंह की नाटक, प्रकाशित नाटकः "बिरजू के बिआह((हास्य व्यंग्य)] "कचोट आ बसमतिया चाउर। अप्रकाशित नाटकः लुटकी बाबा के रामलीला (हास्य व्यंग्य)] "बबुआ गोबरधन (हास्य व्यंग्य)] "लाचारी ब्रह्मचारी (हास्य व्यंग्य)] "दरोगा जी वाह वाह (हास्य व्यंग्य)]"पहरुआ। एकांकी/लघुनाटक "माइंडसेट] (हास्य व्यंग्य)] "बरतुहारी (हास्य व्यंग्य)] "पेटबथी (हास्य व्यंग्य)। एवम भागवत शरण सिंह रचित "सोना", सुरेश कांटक रचित "सरग नरक"," हाथी के दांत", डॉ. नरेंद्र रस्तोगी रचित मास्टर गणेशी राम", एवम डॉ योगेंद्र चौबे, शशिभूषण सिंह, जयकांत सिंह जय, डॉ राजेश मांझी, अरविंद विद्रोही आदि के नाटक भी सामाजिक चेतना, सामाजिक जन जागरण का धर्म नहीं त्यागते। इन नाटकों के माध्यम से लोक जागरण और समाज की जागृति की चिंता नाटककार जन समुदाय के बीच ले जाता है।

भोजपुरी नाटकों का स्वर सदैव लोक जागरण और समाज की जागृति की चिंता करने वाला रहा। जबकि इसके इस क्षेत्र का लोकनाट्य सामान्य मनोरंजनात्मक ही था। ऐसे में नाटकों के भीतर लोक जागरण और समाज की जागृति की चेतना का स्वर सुनाई पड़ना इसके स्रोत के अनुसंधान की ओर भी प्रेरित करता है। हमारी समस्या तब और भी गंभीर हो जाती है जब हम यह पाते हैं कि भिखारी ठाकुर जिस नाच को अपना माध्यम चुनते हैं वह केवल और केवल सस्ते मनोरंजन, भौंडे मजाक तक सीमित थी ऐसे में उस के माध्यम से लोक जागरण और समाज की जागृति की चिंता करने वाले नाटक जन समुदाय के बीच ले जाना कितना चुनौतीपूर्ण था। एक मनोरंजनात्मक विधा में लोक जागरण की विषय वस्तु को समाहित करना आखिरकार कैसे संभव हुआ। राहुल सांकृत्यायन जो हिंदी समेत दर्जनों भाषाओं के जानकार थे उन्होंने भोजपुरी भाषा को ही, नाटक को ही अपना विषय क्यों चुना? क्या इसके पीछे की भोजपुरी नाटकों की लोक जागरण और समाज की जागृति की चिंता अथवा प्रतिरोध की चेतना ही प्रमुख कारण थी।

भोजपुरी के साथ तुलनात्मक रूप से हम हिंदी या अन्य भाषाओं के नाटकों को देखते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि लोक जागरण और समाज की जागृति की चिंता अथवा प्रतिरोध की चेतना अन्य भाषाओं के नाटकों में प्रमुखता से स्थापित है। ऐसा नहीं है कि यह चेतना सिर्फ भोजपुरी नाटक में ही पाई जाती है लेकिन तुलना में हम यह जरूर पाते हैं कि जहां दूसरी भाषाओं में लिखे गए नाटकों में लोक जागृति की चिंता के अलग भी स्वर मिल जाते हैं। वही भोजपुरी में अन्य प्रकार के स्वर बिल्कुल शून्य हैं। एक अदृश्य विभाजन रेखा है जो मनोरंजन और अगंभीर विषयों को भोजपुरी लोकनाट्यों में समाहित कर देती है और दूसरी ओर भोजपुरी नाटक अपनी लोक जागृति की चिंता के स्वर को स्वयं में जागृत रखते हैं।

संदर्भ

उपाध्याय, कृष्णदेव. (2002). *भोजपुरी लोक साहित्य*. वाराणसी: वि. वि. प्रकाशन.

उप्रेती, डॉ. कुन्दनलाल. (1971). *लोक साहित्य के प्रतिमान*. अलीगढ़ : भारत प्रकाशन मंदिर.

ओझा, डॉ. दशरथ. (2000). *हिन्दी नाटक उद्भव और विकास*. दिल्ली : राजपाल एण्ड संस.

तिवारी, उदय नारायण. (1984). *भोजपुरी भाषा और साहित्य*. पटना: बिहार राष्ट्र भाषा परिषद

परमार, श्याम. (1973). *मालवी लोक साहित्य का अध्ययन*. आगरा:

यादव, डॉ. द्विजराम. (2004). *लोक-साहित्य और भोजपुरी लोक-साहित्य*. गोरखपुर : नीलकमल प्रकाशन.

सत्येन्द्र. (1962). *लोक-साहित्य विज्ञान*. आगरा: शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं०.

सिंह, ठाकुर राय. (सं.). (2015). *ढोला मारूरा दूहा*. काशी: ना०प्र० सभा.

सिंह, डॉ. दुर्गाशंकर प्रसाद. (2001). *भोजपुरी कवि और काव्य*. पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद.

सिंह, नागेन्द्र प्रसाद. (सं.). (2011). *भिखारी ठाकुर रचनावली*. पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद.

हुसैन, तैयब. (2008). *भिखारी ठाकुर*. दिल्ली : साहित्य अकादमी.

वृद्धावस्था का दंश झेलती वृद्ध स्त्री: प्रेमचंद की कहानियाँ

अभय जैन*

abhay.jain128@gmail.com

सारांश

हिंदी साहित्य के महान कथाकार प्रेमचंद की कहानियाँ उनकी सामाजिक-चेतना, मानवीय दर्शन और साहित्यिक उत्कृष्टता के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में समाज के विभिन्न पहलुओं को सुदृढ़ता से प्रस्तुत किया है, जिसमें वृद्धावस्था और उसके संघर्ष का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। इस शोध लेख में हम वृद्धावस्था का दंश झेलती वृद्ध स्त्री के चित्रण पर ध्यान केंद्रित करेंगे। वृद्धावस्था का संघर्ष झेलती वृद्ध स्त्री एक सामाजिक और मानवीय समस्या है जो समाज में उत्पन्न होने वाली विभिन्न प्रतिबंधनों और सामाजिक अशांति का परिणाम है। प्रेमचंद की कहानियों में वृद्धावस्था के दौरान स्त्रियों के अनेक पहलुओं का चित्रण किया गया है। इन कहानियों में स्त्रियों के जीवन की त्रासदी और संघर्षों को प्रेमचंद ने बेहद उत्कृष्ट रूप से व्यक्त किया है।

इस लेख में हम प्रेमचंद की कहानियों के माध्यम से वृद्ध स्त्री के चरित्र के संघर्ष, उनकी भावनाओं और समाज में उनके स्थान की विवेचना करेंगे। हम प्रेमचंद की कहानियों के माध्यम से वृद्धावस्था के संघर्षों को समझने का प्रयास करेंगे और इससे हमारे समाज में विकसित होने वाली समस्याओं के साथ जोड़ेंगे। जिससे वृद्धावस्था का दंश झेलती वृद्ध स्त्री का चित्रण हमें उनकी सामाजिक अवस्था और मानवीय समस्याओं के साथ अधिक गहराई से समझने में मदद मिलेगी।

मूर्धन्य साहित्यकार प्रेमचंद भी इन्हीं साहित्यकारों में से एक हैं। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से बेमेल-विवाह, विधवा विवाह, दहेज-प्रथा, छुआछूत, किसान, आदि की समस्याओं का चित्रण स्पष्ट रूप से किया है। यहाँ केवल उनकी कहानियों में चित्रित वृद्ध स्त्री पात्रों के माध्यम से वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुकी स्त्रियों की समस्याओं को उजागर किया जाएगा। वृद्ध जीवन से परिचित करवाने वाली कहानियों में 'बेटों वाली विधवा', 'बूढ़ी काकी', 'पंचपरमेश्वर', 'विध्वंस' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों में प्रेमचंद ने ऐसी वृद्ध स्त्रियों का चित्रण किया है जो परिवार के सदस्यों के बीच उपेक्षणीय बनकर रह गई हैं।

बीजक शब्द – हिंदी साहित्य, कहानियाँ, वृद्ध विमर्श, वृद्धावस्था, वृद्ध स्त्री

मूल लेख

बाल्यावस्था, शैशवास्था, किशोरावस्था, प्रौढ़वस्था और वृद्धावस्था मनुष्य जीवन के विभिन्न पड़ाव माने जाते हैं। परिवार के उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हुए व्यक्ति प्रौढ़ावस्था से वृद्धावस्था में कब प्रवेश कर जाता है, पता ही नहीं चलता। जीवन का यह एक ऐसा पड़ाव होता है जहाँ शरीर के अंग धीरे-धीरे शिथिल

* **सहायक प्रोफ़ेसर – हिंदी विभाग, शासकीय स्वशासी कन्या स्नात्कोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)**

पड़ने लगते हैं। अंगों की शिथिलता और शरीर की जरजरावस्था का प्रभाव व्यक्ति की कार्य क्षमता पर पड़ना अस्वाभाविक नहीं है। ऐसी स्थिति में अधिक योगदान न दे सकने के कारण व्यक्ति की महत्ता धीरे-धीरे कम होने लगती है और परिवार और समाज दोनों के लिए वह नकारा और बोझ बन जाता है। लेकिन यही वे वृद्ध होते हैं जो एक समय युवा थे और हम उनपर निर्भर होते थे। ऐसी स्थिति में समाज और परिवार का भी यह उत्तरदायित्व बनता है कि अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए उनकी मूलभूत आवश्यकताएं तो पूर्ण करें ही साथ ही सम्मानपूर्ण जीवन जीने के लिए भी प्रेरित करें।

संयुक्त परिवारों के विघटीकरण को अक्सर वृद्धजनों के सूनेपन और अकेलेपन का कारण मान लिया जाता है जिसके चलते ठीक से उनकी देखभाल भी नहीं हो पाती। लेकिन क्या एक समय के बाद संयुक्त परिवारों में भी उन्हें वह सम्मान और आदरभाव मिल पाता है? वहाँ भी उन्हें स्थान-स्थान पर परिवार के सदस्यों की उपेक्षा का पात्र बनना पड़ता है। वृद्धजनों के इस विडंबनापूर्ण जीवन को अनेक साहित्यकारों ने अपने उपन्यासों, अपनी कहानियों और तमाम विधाओं के माध्यम से समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है।

'बेटों वाली विधवा' कहानी में लेखक ने फूलमती के माध्यम से ऐसी तमाम वृद्ध विधवा स्त्रियों की पारिवारिक स्थिति का चित्रण किया है जो पति के मरणोपरांत अपने ही घर में महत्वहीन होने लगती हैं। पं. अयोध्यानाथ के रहते हुए परिवार के किसी भी सदस्य ने फूलमति की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया था। सब कुछ उसकी इच्छानुसार ही होता था। चारों बेटे उनकी खूब सेवा करते थे लेकिन समय बदलते देर कहाँ लगती है? इसे फूलमति के माध्यम से समझा जा सकता है। पं. अयोध्यानाथ के मरणोपरांत फूलमती परिवार में धीरे-धीरे बेटों और बहुओं की अवग्या का पात्र बनने लगी थी। मसलन: पं. अयोध्यानाथ की तेरहवीं के समय कौन-सी वस्तु किस परिमाण में आएगी, इस संबंध में फूलमति ने पहले ही निश्चित कर दिया था। लेकिन अनायास यह कैसा परिवर्तन था कि न तो उसके कहे अनुसार सामान लाया गया और न ही उसे कुछ दिखाने और बताने की आवश्यकता समझी गई और न ही आयोजन के संबंध में किसी प्रकार की सलाह ली गई। यहाँ तक की महमानों को भी जो पूछना होता कांतानाथ या बड़ी बहु से ही पूछते। स्पष्ट है कि फूलमती परिवार के सदस्यों के साथ-साथ मेहमानों की दृष्टि में भी उपेक्षा और अनादर का पात्र बनकर रह जाती है।

कुमुद का विवाह फूलमती की उपेक्षा का दूसरा दृष्टांत प्रस्तुत करता है। घर के सभी सदस्य कुमुद के विवाह के बारे में सलाह-मसौरा करते हैं लेकिन इस कार्य में माँ की दख़ल-अंदाजी आवश्यक नहीं समझी जाती। कहाँ फूलमती कुमुद का विवाह अपनी इच्छानुसार पहले से तय पं. मुरारीलाल के बेटे के साथ करवाना चाहती थी और कहाँ फूलमती के बेटे माँ की अवज्ञा करके कुमुद का विवाह उम्रदराज पुरुष के साथ करवा देते हैं, कहाँ फूलमती इस विवाह में दस हजार रुपए लगाना चाहती थी और कहाँ घर के अन्य सदस्य पाँच हजार रुपए में ही विवाहोत्सव संपन्न कर देते हैं। हालांकि उमानाथ इस संबंध में माँ की भी सलाह ले लेना चाहते थे लेकिन अमरकांत की दृष्टि में फूलमती की बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी थी। माँ ने विवाह में दस हजार खर्च करने का प्रस्ताव किया तब उनके इस विचार से असहमत होते हुए कांतानाथ कहता है—

"लेकिन हिस्से की बात कहती हो तो कुमुद का हिस्सा कुछ नहीं। दादा जीवित थे, तब और बात थी। वह उसके विवाह में जितना चाहते, खर्च करते। कोई उनका हाथ न पकड़ सकता था ...."[1]

फूलमति ने कुमुद के संबंध में जो पहले से तय किया हुआ था, वह क्षण-भर में धूल-धूसरित हो जाता है। इसके पश्चात फूलमति न तो कुमुद के विवाह में किसी प्रकार के हस्तक्षेप करने की आवश्यकता महसूस करती है और न किसी प्रकार की उत्सुकता ही प्रकट करती है।

उमानाथ अखबार में आपत्तिजनक लेख निकलने के अपराध में पाँच हजार रुपए की जमानत के बहाने फूलमती के आभूषणों को हथिया लेना चाहता था। दयानाथ का इसमें भरपूर सहयोग मिलता है। न्याय और नैतिकता की दृष्टि से कांतानाथ और सीताराम इस षड्यंत्र के खिलाफ खड़े नजर तो आते हैं लेकिन इस अन्याय और अनैतिकपूर्ण कार्य का विरोध नहीं कर पाते। बेटे की जमानत के निमित्त फूलमति अपने सारे गहने उमानाथ को दे देती है जिनसे वह अपनी जमानत की भरपाई आसानी से कर सकता था। यद्यपि उमानाथ और दयानाथ माँ से आभूषण न लेने का कौशल करते हैं फिर भी फूलमति नहीं मानती और कहती है—

"तुम अगर यों नहीं लोगे तो मैं खुद जाकर इन्हें गिरोह रख दूँगी और खुद जिला हाकिम के पास जमानत जमा कर आऊँगी। अगर इच्छा हो तो यह परीक्षा भी लेलो। आँखें बंद हो जाने के बाद क्या होगा, भगवान जाने। लेकिन जब तक जीती हूँ तुम्हारी ओर कोई तिरछी आँखों से देख नहीं सकता।"[2]

वृद्धजन अपने जीवन की सारी कमाई अपनी संतान या रिश्तेदारों के नाम इस उम्मीद के साथ कर देते हैं कि आगे चलकर ये मेरे जीवनाधार होंगे लेकिन बाद में यही लोग उनकी मूलभूत आवश्यकताओं के प्रति अपनी कर्तव्यविहीनता या असमर्थता दर्शाते नजर आते हैं। यह स्थिति 'बूढ़ी काकी' और 'पंचपरमेश्वर' कहानियों में क्रमशः बूढ़ी काकी और खाला जान में स्पष्टतया देखी जा सकती है। काकी के बेटे नहीं थे, जिसके कारण वह अपनी सारी जमीन-जायदाद अपने भतीजे बुद्धिराम के नाम कर देती है। इसके बाद काकी का जीवन एकाकीपन, निःसहाय और पराश्रित बनकर रह जाता है। बच्चे भी बूढ़ी काकी को अपना मन बहलाने का साधन समझकर नित्य सताया करते थे। काकी के प्रति बच्चों के इस व्यवहार पर उन्हें कोई कुछ नहीं कहता था। उल्टे काकी के रुदन का एक मात्र कारण काकी की समय पर सेवा-टहल न होना समझ लिया जाता था, जबकि ऐसा नहीं था कि उनके इस करुणामयी रुदन की वास्तविकता से परिवार के अन्य सदस्य अनजान थे। उस घर में लाड़ली एक मात्र छोटी लड़की थी जिससे काकी को थोड़ा-बहुत सुख प्राप्त होता था।

संपत्ति अपने नाम लिखवाते समय बुद्धिराम ने काकी से अनेक वादे किए थे लेकिन आगे चलकर उन आश्वासनों की वास्तविकता केवल संपत्ति तक सिमटती दिखाई पड़ती है। काकी को दो समय की रोटी तक ठीक समय पर मयस्सर नहीं हो पाती थी।

"आहा! कैसी सुगंध है! अब मुझे कौन पूछता है? जब रोटियों के ही लाले पड़े हैं तब ऐसे भाग्य कहाँ कि भरपेट पूड़ियाँ मिलें?"[3]

बुद्धिराम के बड़े बेटे के तिलक के दिन घर में बहुत धूम-धाम थी। मेहमान भोजन से निपट गए होंगे यह सोचकर बूढ़ी काकी रसोईघर में जा बैठती है। रूपा ने यह दृश्य देखा तो आग बबूली हो गई और उसे कोसने लगी-

"ऐसे पेट में आग लगे, पेट है या भाड़? कोठरी में बैठते क्या दम घुटता था? अभी मेहमानों ने नहीं खाया, भगवान को भोग नहीं लगा;तब तक धैर्य न हो सका? आकर छाती पर सवार हो गई। जल जाए ऐसी जीभ। दिन भर खाती न होती तो न जाने किसकी हाँडी में मुँह डालती? गाँव देखेगा तो कहेगा बुढ़िया भरपेट खाने को नहीं पाती, तब तो इस तरह मुँह बाए फिरती है। डाइन मरे न माचा छोड़े। नाम बेचने पर लगी है। नाक कटवाकर दम लेगी। इतना ठूसती है, न जाने कहाँ भस्म हो जाता है। भला चाहती हो तो जाकर कोठरी में जाकर बैठो, जब घर के लोग खाने लगेंगे तब तुम्हें भी मिलेगा। तुम कोई देवी नहीं हो कि चाहे किसी के मुँह में पानी जाए परंतु तुम्हारी पूजा पहले हो जाये।"[4]

उसे क्या पता था कि इतनी-सी भूल का यह परिणाम होगा। मेहमानों के भोजन कर चुकने के बाद अन्य लोगों ने भी अपने पेट की क्षुधा शांत की लेकिन बूढ़ी काकी की सुध किसी ने न ली। ऐसी स्थिति में दीन-हीन और निःसहाय अवस्था में क्षुधातुर वह वृद्ध स्त्री दूसरों की जूठन खाने के लिए विवश दिखाई पड़ती है।

'बूढ़ी काकी' कहानी की पुनरावृत्ति 'पंचपरमेश्वर' कहानी में स्पष्टतया देखी जा सकती है। इस कहानी की खाला[मौसी] एक वृद्ध स्त्री है। बूढ़ी काकी की भाँति खाला जान के निकटस्थ संबंधियों में भी कोई नहीं था जो उसकी संपत्ति का उत्तराधिकारी बनकर उसकी देखरेख कर सके। इसी कारण उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति जुम्मन शेख के नाम कर दी थी। बुद्धिराम की भाँति शेक जुम्मन भी अपनी खाला से वादे तो करता है लेकिन उनका निर्वहन जिम्मेदारी के साथ करने में असमर्थ दिखाई पड़ता है। इस संबंध में लेखक ने लिखा है--

"जब तक दानपत्र की रजिस्ट्री न हुई थी, तब तक खालाजान का खूब आदर-सत्कार किया गया; उन्हें ख़ूब स्वादिष्ट पदार्थ खिलाए गए। हलवे-पुलाव की वर्षा-सी की गयी; पर रजिस्ट्री की मोहर ने इन खातिरदारियों पर भी मानो मुहर लगा दी।"[5]

पति-पत्नी दोनों का खाला की ओर से धीरे-धीरे मोह भंग होने लगा। जब वह खाने के लिए बैठती तब उसे कुछ ताने भी सुनने पड़ते। मसलन--

"बुढ़िया न जाने कब तक जियेगी। दो-तीन बीघे ऊसर क्या दे दिया, मानो मोल ले लिया है! बघारी दाल के बिना रोटियाँ नहीं उतरतीं।! जितना रुपया इसके पेट में झोंक चुके, उतने से तो गाँव मोल ले लेते।"[6]

खाला को जब ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब एक साथ निर्वाह होना सम्भव नहीं है तब वह अपने पेट भर के लिए जुम्मनशेक से रुपए देने के लिए कहती है लेकिन जुम्मन उसके लिए भी राज़ी नहीं होता। परिणाम यह हुआ कि पंचों से न्याय की उम्मीद से खाला आस-पास के गाँवों से लोग एकत्र कर लेती है। गाँव के लोगों

पर जुम्मन शेख का कुछ-न-कुछ ऋण अवश्य रहता था इसलिए अपनी पराजय से वह निश्चिंत था। लेकिन संबंधों की ओट में न्याय और कानून अपना धर्म नहीं छोड़ सकते इसीलिए परिणाम जुम्मन के प्रतिकूल आया।

उक्त दोनों कहानियों से स्पष्ट है कि जिन वृद्ध जनों की सम्पत्ति के बल पर बुद्धिराम और जुम्मन शेख का परिवार चल रहा था, उन्हीं लोगों को दो समय की रोटी तक मयस्सर नहीं हो पाती थी। आखिर ऐसा क्यों होता है कि जिसने दूसरे के जीवन को बनाने के लिए अपना जीवन नष्ट कर दिया हो, वृद्धावस्था में उसी के प्रति हम इतना कटुतापूर्ण व्यवहार करने लगते हैं? क्या हम इतने स्वार्थ ग्रस्त हो जाते हैं कि हम उनकी बुनियादी आवश्यकताएं तक पूर्ण नहीं कर सकते? अगर उनके लिए इतना भी नहीं कर सकते तब उनके शेष जीवन में काम आने वाली सम्पत्ति, जमीन-जायदाद हड़पने से पहले उनके आने वाले जीवन के विषय में विचार क्यों नहीं किया जाता?

'समर यात्रा' कहानी में लेखक ने इस बात को उल्लिखित किया है कि स्वाधीनता आंदोलन में क्या युवा, क्या वृद्ध और क्या स्त्री-पुरुष सब बढ़-चढ़कर उत्साह के साथ भाग ले रहे थे और आजादी की लड़ाई में अपनी-अपनी भूमिकाएं निभा रहे थे। कहानी में नौहरी जो एक वृद्ध स्त्री पात्र है इसका एक उदाहरण है। पुलिस के आने पर भय से पूरी भीड़ तितर-बितर हो जाती है लेकिन वृद्ध नौहरी ज्यों की त्यों पुलिस के सामने निर्भीक खड़ी रहती है। पुलिस के सामने कोदई कोई जवाब नहीं दे पाता तब नौहरी कहती है—

"क्या लाल पगड़ी बाँधकर तुम्हारी जीभ ऐठ गई है? कोदई क्या तुम्हारे गुलाम हैं? कि कुदैया - कुदैया कर रहे हो। हमारा ही पैसा खाते हो और हम ही को आँखें दिखाते हो। तुम्हें लाज नहीं आती?"[7]

नौहरी के साहस और उत्साह को देखकर तितर-बितर हो चुके अन्य लोग भी उसके साथ उठ खड़े होते हैं। वृद्धावस्था के कारण नौहरी शारीरिक रूप से कमजोर अवश्य है पर उसमें देश सेवा का भाव कूट-कूटकर भरा हुआ है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'पंचपरमेश्वर' कहानी की खाला और 'समर यात्रा' कहानी की नौहरी दोनों वृद्ध स्त्री पात्र हैं तथापि न तो वे गूँगी हैं और न बहरी, जो देखकर और सुनकर भी शोषणकारी शक्तियों का विरोध न कर सकें। वे अपने-अपने अधिकारों के प्रति सजग और सचेत हैं।

'विध्वंस' कहानी में प्रेमचंद ने गौणिन के माध्यम से उस बुजुर्ग स्त्री की करुणामयी स्थिति का चित्रण किया है जिसके पास रहने के लिए न घर है और न रोजी-रोटी का साधन। वह जमींदार पंडित दीनदयाल की जमीन में झोपड़ी बनाकर अपना जीवन-यापन करती थी। उसका एक मात्र सहारा भाड़ था जिससे उसे पूरे दिन की जीतोड़ मेहनत के बाद एक समय की ही रोटी प्राप्त हो पाती थी। उसे पंडित उदयभान के घर के भी कार्य करने पड़ते थे, इस पर भी उसे कभी-कभी भूखा ही सो जाना पड़ता था।

औपनिवेशिक शासन में जमींदारों द्वारा वंचित वर्गों के शोषण की पराकाष्ठा का अंदाजा कहानी के निम्न प्रसंग से लगाया जा सकता है। चेत्र मास की संक्रांति के दिन जमींदार पंडित उदयभान गौणिन के पास

इतना अनाज भेज देते हैं कि उसे भूनना उसके वश की क्या, किसी भी व्यक्ति के लिए यह एक कठिन कार्य हो सकता था। निश्चित समय में जब कार्य पूर्ण नहीं हुआ तो परिणाम भी उसके विपरीत आना लगभग निश्चित था। अंततः वह भाड़ जो उसकी रोजी-रोटी का एक मात्र उपाय था, पंडित जी अपने कारिंदों द्वारा उसे भी उखड़वा देते हैं। उनके इस कुकृत्य से क्षुब्ध होकर गौणिन कहती है--

"पंडितजी कौन मेरी रोटियाँ चला देता है? कौन मेरे आँसू पौंछ देता है? अपना रक्त जलाती हूँ तब कहीं दाना मिलता है। लेकिन जब देखो खोपड़ी पर सवार रहते हैं, इसलिए न कि उनकी चार अंगुल धरती से मेरा निस्तार हो रहा है। क्या इतनी-सी जमीन का इतना मोल है? ऐसे कितने ही टुकड़े गाँव में बेकाम पड़े हैं, कितनी बखरियाँ उजाड़ पड़ी हुई हैं। वहाँ तो केसर नहीं उपजती फिर मुझी पर क्यों यह आठों पहर धौंस रहती है। कोई बात हुई और यह धमकी मिली कि भाड़ खोदकर फेंक दूँगा, उजाड़ दूँगा, मेरे सिर पर भी कोई होता तो क्या बौछारें सहनी पड़तीं।"[8]

जमींदार के शोषण की चरमसीमा को देखकर गाँव के अन्य लोग गौणिन को दूसरे गाँव में जाकर गुजर-बसर करने का सुझाव देते हैं। लेकिन हरेक व्यक्ति का अपनी जन्मभूमि से आत्मीय जुड़ाव होता है। यही कारण था कि दूसरे गाँवों के सुखों की अपेक्षा उसे अपनी जन्मभूमि के दुःख कहीं अधिक सुखकर मालूम होते थे। इसी कारण गौड़िन लोगों के इस सुझाव को अस्वीकार कर देती है और अपनी मिट्टी से अलग न होने वाली बात पर अडिग रहती है।

लोगों के कहने पर वह पुनः भाड़ बना लेती है। ईर्ष्यावश पंडित दीनदयाल इस बार स्वयं अपनी बर्बरतापूण अमानवीयता का परिचय देते हुए भाड़ को ठोकर मारकर नष्ट कर देते हैं। इन्हीं पैर की ठोकरों के बीच वह स्त्री आ जाती है और पंडितजी की एक लात उसकी कमर पर जा लगती है। जिस आग में पंडितजी जल रहे थे उस आग से वृद्ध स्त्री का तो ज्यादा कुछ नहीं हुआ लेकिन जिस झोपड़ी और एकत्र पत्तों को पंडितजी ने आग के हवाले किया था उसी आग में वह स्त्री भी स्वयं को झोंक देती है। इस आग में स्त्री के अतिरिक्त न जाने कितने और लोगों के घर यहाँ तक पंडितजी का विशाल भवन भी भस्मीभूत हो जाता है।

स्पष्ट है कि पराधीन भारत में गाँव की जमीन पर जमींदारों का स्वामित्व हुआ करता था। क्या किसान, क्या मजदूर, और क्या दलित सभी उनके अत्याचार, शोषण और अमानवीयतापूर्ण व्यवहार सहन करने के लिए विवश होते थे। इस संबंध में गोपालराय लिखते हैं—

"औपनिवेशिक शासन में गाँव की पूरी जमीन पर जमींदार का अधिकार होता था और कहीं झोपड़ी डालकर गुजर-वसर करने वाले को भी उसे बेगार देनी पड़ती थी। इस बेगार में माननवीय संवेदना के लिए तनिक भी स्थान नहीं था। इसका उल्लंघन करने वाला रैयत-जमींदार द्वारा बरबाद कर दिया जाता था। गरीब ग्रामीण की फरियाद सुनने वाला कोई नहीं था। भड़बूझे, नाई घसियारे, दर्जी आदि इस अत्याचार के शिकार थे।"[9]

इसी प्रकार 'समर यात्रा' कहानी की नौहरी कहती है—

"हम और तुम क्या अभी बूढ़े होने जोग थे? हमें पेट की आग ने जलाया है। बोलो ईमान से, यहाँ इतने आदमी हैं किसी ने इधर छः महीने से पेट भ रोटी खाई है? घी किसी को सूँघने को मिला है? कभी नींद भर सोए हो? जिस खेत का लगान तीन रुपए देते थे, अब उसी के नौ-दस देते हो। क्या धरती सोना उगलेगी?"[10]

'ईदगाह' यद्यपि एक बाल-मनोवैज्ञानिक केंद्रित कहानी है तथापि कहानी में वृद्ध अमीना के माध्यम से उन वृद्ध स्त्रियों की स्थिति को भी लक्षित किया जा सकता है जो गरीबी में अपना जीवन गुजर-बसर करने के लिए विवश हैं। प्रस्तुत कहानी की अमीना एक ऐसी ही पात्रा है। वह दीन-हीन अवस्था में अपना जीवन यापन करती थी। उसे अपने साथ-साथ हामिद जिसके माता-पिता नहीं हैं का भी पालन-पोषण करना पड़ता है।

हामिद मेला देखने के लिए जाना चाहता था लेकिन अमीना न तो उसे अकेला भेज सकती थी और न स्वयं ही उसके साथ जा सकती थी। उसकी इस विवशता का एक मात्र कारण उसकी आर्थिक विपन्नता था। उसके पास इतना पैसा नहीं था कि ईद के त्योहार पर घर आने वाले लोगों की खातेदारी करने के लिए सारी वस्तुएं आसानी से जुटा सके।

अक्सर ऐसा देखा जाता है कि छोटे बच्चे परिवार के बुजुर्ग लोगों के निकट रहना अधिक पसंद करते हैं। इसे हम 'बूढ़ी काकी' कहानी की पात्रा लाड़ली में देख चुके हैं। इसी तरह 'ईदगाह' कहानी में जितनी चिंता अमीना को हामिद की है उतनी ही चिंता हामिद में भी अपनी वृद्ध दादी माँ के प्रति देखी जा सकती है। यही कारण था कि खिलौने, मिठाई आदि का त्याग करके हामिद अपनी दादी के लिए चिमटा ले जाता है। वह जानता है कि रोटी बनाते समय दादी के हाथ जल जाते हैं।

वृद्ध और युवा पीढ़ी के बीच सामन्जस्य न होने के कारण अक्सर दोनों के बीच इस बात का द्वंद्व देखा जाता है कि आज का युवा परंपरागत रूढ़ियों और अंधविश्वासों के बंधनों की बेड़ियों को तोड़कर आगे बढ़ जाना चाहता है लेकिन वृद्ध लोग समाज में व्याप्त भ्रांतियों को धारण करके उन्हीं में जीना चाहते हैं। 'तेंतर' कहानी में प्रेमचंद ने ऐसे ही वृद्धजनों का चित्रण किया है जो समाजोन्नति में किसी-न-किसी रूप में बाधक हैं। प्रस्तुत कहानी में जहाँ दामोदर दत्त और उनकी पत्नी दोनों युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते नजर आते हैं तो उनकी माँ वृद्धजनों का प्रतीक हैं।

तीन पुत्रों के बाद कन्या का जन्म एक अंधविश्वास के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस कहानी में दामोदर दत्त और उनकी पत्नी के तीन पुत्रों के बाद एक कन्या का जन्म होता है। जिसे दामोदर दत्त की वृद्ध माँ अमंगलकारी समझती है तो दामोदर दत्त और उनकी पत्नी इसे एक अंधविश्वास मात्र मानती है। सच ही तो है कि समाज में प्रचलित इस तरह की मान्यताएं एक अंधविश्वास के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यही कारण है कि दामोदर दत्त कन्या के जन्मोत्सव का समर्थन करते नजर आते हैं।

धीरे-धीरे दामोदर दत्त भी जो एक शिक्षित व्यक्ति हैं, वे भी अपनी माँ के पारंपारिक अंधविश्वासों में उलझने लगते हैं और किसी प्रकार के अपसगुन से बचने का उपाय ढूँढ़ते नजर आते हैं।

वृद्ध माँ के जब सब दाँव-पेंच निष्काम होने लगे तब स्वयं ही कन्या के जन्म को अशुभ और अपनी बात को किसी भी प्रकार सिद्ध करने के उद्देश्य से नाना प्रकार के ढोंग रचने लगी और बच्चे की माँ के प्रति अमंगल कामनाएं करने लगती है मसलन--

"बहु को दो-चार दिन ज्वर भी नहीं आ जाता कि मेरी शंका की मर्यादा रह जाए। पुत्र भी किसी दिन पैर गाड़ी पर से नहीं गिर पड़ता, न बहु को मायके से ही किसी के स्वर्गवास की सुनाववनी आती है।"[11]

'पिसन हारी का कुआं' कहानी में गौमती नाम की वृद्ध स्त्री का चित्रण किया गया है। मरणासन्न अवस्था तक उसके जीवन की एक मात्र लालसा पति के नाम पर गाँव में कुआं बनवाने की रह गई थी जो उसके जीवनकाल में पूरी न हो सकी। कुआँ बनवाने के उद्देश्य से अपने जीवन भर की कमाई धरोहरस्वरूप चौधरी विनायक सिंह को दे देती है। विनायक सिंह यद्यपि एक निष्ठावान व्यक्ति थे परंतु पुत्र की विवशतावश वे अपने कर्तव्य-पालन से कुछ विचलित दिखाई देने लगते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि जो लोग अपना जीवन त्याज्य बनाकर दूसरों के जीवन को बनाने और उनकी लालसाओं को पूर्ण करने के लिए समर्पित कर देते हैं बाद में उन्हीं लोगों के छोटे-छोटे स्वप्न तक पूर्ण नहीं हो पाते।

निष्कर्ष

उक्त सभी कहानियों के माध्यम से कहानीकार ने समाज और परिवार दोनों स्तरों पर वृद्ध स्त्रियों की दीन-हीन अवस्था, उनके साथ हो रहे अन्याय, अत्याचार को उद्घाटित किया है। वृद्ध लोगों के संबंध में इसे एक विडंबना ही कहना चाहिए कि जिनके बल पर पूरे परिवार का भरण-पोषण होता है बाद में वे ही अपनों के बीच उपेक्षा के पात्र बनकर रह जाते हैं। या फिर कहा जाए कि वृद्धावस्था में बेटों के सहारे बैठकर वृद्धावस्था की वैतर्णी पार करने की आशा करने वाले वृद्धजनों को दो समय की रोटी तक मयस्सर नहीं हो पाती। ये सभी कहानियाँ केवल बीसवीं सदी की वृद्ध स्त्री की स्थिति को ही चित्रित नहीं करतीं बल्कि वर्तमान परिप्रेक्ष में भी उनकी प्रासांगिकता बनी हुई है। समाज और परिवार दोनों स्तरों पर फूलमति, खालाजान, गौणिन जैसी वृद्ध स्त्रियाँ हैं और बुद्धिराम, जुम्मन शेख जैसे भतीजे तथा कांतानाथ, उमानाथ, सीताराम जैसी संतान भी है जिनके द्वारा माता-पिता अथवा उन्हीं के समान अन्य वृद्धजन आय दिन नाना प्रकार से प्रताड़नाओं का शिकार होते रहते हैं। इसी प्रसंग में भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', उदय प्रकाश की 'छप्पन तोले का कर्धन', ममता कालिया की 'आजादी', जैसी कहानियों को भी वृद्ध स्त्री के संबंध में देखा जा सकता है।

वर्तमान समय में वृद्धजनों के अकेलेपन, उनकी देखरेख से जुड़ी समस्याएं दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इन समस्याओं का निवारण किया जाना आवश्यक है। इसके लिए कुछ उपाय अपनाए जा सकते हैं—कई

बार देखा जाता है कि युवा पीढ़ी रोजगार की तलाश में अपने वृद्ध माता-पिता को घर में अकेला छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं। जबकि होना यह चाहिए कि उन्हें भी अपने साथ ले जाएं। इससे उनके एकाकीपन, उनकी स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। इसमें वृद्धजनों को भी स्वयं थोड़ा आगे आना होगा। बहुत-से लोग जन्मभूमि से लगाव होने के कारण उसे छोड़कर नहीं जाना चाहते। साथ रखने की समस्या उन लोगों के साथ हो सकती है जो लोग बाहर जाकर जैसे-तैसे अपना जीवन गुजर-बसर करते हैं। ऐसे लोगों को चाहिए कि वे स्वयं को छोटे-छोटे कार्यों से अलग न होने दें। थोड़ा-बहुत वक्त हम-उम्र लोगों के साथ सकारात्मक वार्तालाप द्वारा व्यतीत कर सकते हैं। ऐसा करने से तनावपूर्ण जीवन और कई प्रकार की बीमारियों से स्वयं को मुक्त रखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त मूलभूत सुविधाएं सरकार की ओर से भी मुहैया करवाई जानी चाहिए मसलन: वृद्ध पेंशन, स्वास्थ्य सेवाएं आदि।

संदर्भ

[1] मुंशी, प्रेमचंद. (2004). मानसरोवर. भाग-1. इलाहाबाद: सुमित्र प्रकाशन. पृ.सं. 46

[2] मुंशी, प्रेमचंद. (2004). मानसरोवर. भाग-1. इलाहाबाद: सुमित्र प्रकाशन. पृ.सं. 45

[3] मुंशी, प्रेमचंद. (2005). मानसरोवर. भाग-8. इलाहाबाद : सुमित्र प्रकाशन. पृ.सं. 92

[4]मुंशी, प्रेमचंद. (2005). मा नसरोवर. भाग-8. इलाहाबाद : सुमित्र प्रकाशन. पृ.सं. 93

[5] मुंशी, प्रेमचंद. (2005). मानसरोवर. भाग-7. इलाहाबाद : सुमित्र प्रकाशन. पृ.सं. 93

[6] मुंशी, प्रेमचंद. (2005). मानसरोवर. भाग-7. इलाहाबाद : सुमित्र प्रकाशन. पृ.सं. 93

[7] मुंशी, प्रेमचंद. (2005). मानसरोवर. भाग-7. इलाहाबाद : सुमित्र प्रकाशन. पृ.सं. 42

[8]मुंशी, प्रेमचंद. (2005). मानसरोवर. भाग-8. इलाहाबाद : पृ.सं. 113

[9]गोपालराय. (2011). हिंदी कहानी का इतिहास 1900 से 1950 आख्यायिका से नई कहानी तक. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ.सं. 129

[10] मुंशी, प्रेमचंद. (2005). मानसरोवर. भाग-7. इलाहाबाद : सुमित्र प्रकाशन. पृ.सं. 40

[11] मुंशी, प्रेमचंद. (2005). मानसरोवर. भाग-3. इलाहाबाद : सुमित्र प्रकाशन. पृ.सं. 72

घर-बार छोड़कर संन्यास नहीं लूंगा...[1]

यशवन्त कुमार विश्वकर्मा*

yashvantkumardu2019@gmail.com

3 अप्रैल 2020 के कोरोना काल में राजकमल प्रकाशन ने कवि-लेखक विनोद कुमार शुक्ल और उनके पाठकों के बीच एक आभासी बातचीत की मेजबानी करने के लिए फेसबुक लाइव किया। वीडियो उनके यह कहने के साथ शुरू होता है कि, 'मैं विनोद कुमार शुक्ल अपने घर पर हूं'।[2] यह एक पंक्ति उनके लेखन की 'मैटर आफ फैक्ट' शैली की नज़ीर है जो गहराई से उनके लेखन में दिखाई देती है।

वे यह भी कह सकते थे कि मैं विनोद कुमार शुक्ल हूं, मुझे 1999 का प्रतिष्ठित साहित्य पुरस्कार प्राप्त है या ये कि मैं विनोद कुमार शुक्ल हूं और मेरे उपन्यास पर दिग्गज फिल्मकार मणि कौल ने फिल्म बनाई है। पर वह यह सब कहते तो शायद विनोद कुमार शुक्ल नहीं होते, खासकर वे विनोद कुमार शुक्ल, जिन्हें हम-सब जानते हैं।

वे आगे कहते हैं, 'कहने के लिए इतना अधिक और बिखरा हुआ है कि मैं अपने को समेट नहीं पाता'।[3] यह एक लेखक की विवशता नहीं है बल्कि उसकी यथार्थ अभिव्यक्ति है जो लेखन की दुनिया के साथ जी जा रही दुनिया में सत्यनिष्ठ होने से उपजती है।

विनोद कुमार शुक्ल हिंदी के प्रतिनिधि कवि-उपन्यासकार हैं।

इनका पहला कविता-संग्रह 'लगभग-जयहिन्द' नाम से 1971 ई में प्रकाशित हुआ था। वह आदमी चला गया गरम कोट पहिनकर विचार की तरह(1981), सबकुछ होना बचा रहेगा(1992), अतिरिक्त नहीं(2000), कविता से लंबी कविता(2001) तथा कभी के बाद अभी(2012) इत्यादि इनके प्रमुख कविता संग्रह हैं। नौकर की कमीज(1979) तथा दीवार में एक खिड़की रहती थी(1997), खिलेगा तो देखेंगे(1996), हरी घास की छप्पर वाली झोपड़ी और बौना पहाड़(2011) इत्यादि इनके चर्चित उपन्यास हैं।

विनोद कुमार शुक्ल ने कविताओं और उपन्यासों की तुलना में कहानियां कम लिखी हैं, जिस कारण कहानीकार विनोद कुमार शुक्ल पर अपेक्षाकृत कम बातचीत होती है, परंतु 2023 में 'पेन अमेरिकी लिटरेरी अवार्ड' मिलने के बाद इनके समग्र साहित्य को गंभीरता से लिया जाने लगा है और इस क्रम में इनकी कहानियों के पन्ने भी अब पलटे जाने लगे हैं।

* **पी-एच. डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

विनोद कुमार शुक्ल ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने कम कहानियां लिखकर भी इस विधा पर अपनी गहरी छाप छोड़ी है। साधारण आय वाले मामूली लोग, उनके छोटे-छोटे जीवन संघर्ष और स्मृतियों का संसार उनकी कहानियों का निर्माण करते हैं।

महाविद्यालय कहानी-संग्रह में कुल ग्यारह कहानियां संकलित हैं, जिनका प्रकाशन पुस्तकालय संस्करण के रूप में 1996 में हुआ। ये सारी कहानियां 1957-74 के बीच लिखी गई हैं। 4अपनी खास किस्म की भाषा और शैली के साथ-साथ प्रासंगिक विषय चयन इन कहानियों को महत्त्वपूर्ण बनाता है। इनकी कहानियों में मामूलीपन भी उत्सव की तरह आता है। इनकी कहानी का कोई पात्र किसी मकान की नींव की खुदाई में चांदी से भरी हांडी पाकर खुश नहीं होता बल्कि साइकिल से दफ़्तर जाते वक्त अपने कमीज की जेब में नीम की एक सूखी पत्ती गिर जाने से उत्साहित हो जाता है। जाहिर है कि विनोद कुमार शुक्ल अपनी विशिष्ट भाषा और संवेदना के जादू से जीवन को पकड़ना और उसे वृहत्तर रूप में संबोधित करना चाहते हैं।

'रुपये' इस संग्रह की पहली कहानी है, जिसमें एक नौकरीपेशा मध्यमवर्गीय व्यक्ति 'मन्नन' को यह भ्रम हो जाता है कि उसके बीस रुपये कहीं खो गये हैं, जिस कारण उसका मासिक बजट असंतुलित होता दिख रहा है और वह कमोबेश परेशान हो उठता है। वह सोचने लगता है कि अब वह इन खो गये बीस रुपए की भरपाई कैसे करेगा। एक बार उसने यह सोचा कि घर वह इस बार पचास की जगह चालीस रुपए ही भेजेगा और रविवार को खाना नहीं खाएगा और शाम को चाय नहीं पीएगा। इस पूरे प्रकरण के दौरान वह एक तरह की बेचैनी में जी रहा होता है। सड़क पर चलते हुए कागज़ के टुकड़े कई बार उसे बीस रुपए के नोट लगते थे। यह सब होते हुए अन्त में उसके खोए हुए रुपये मिल जाते हैं, जिसे वह अपने ही पेटी में रखकर भूल गया था।

यह कहानी निम्न-मध्यवर्गीय परिवार के उस व्यक्ति की कहानी है, जिसे ग्रामीण भाषा में 'कमाऊ' कहा जाता है। इसी आदमी पर उसके पूरे परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी होती है। इसलिए उसके लिए बीस रुपए मायने रखते हैं। वह परिवार के सदस्यों से नहीं कहेगा कि एकाध इतवार वे सब भी उपवास कर लें क्योंकि उसने जानबूझकर रुपए नहीं खोए हैं, पर स्वयं वह चार इतवार उपवास करके अपने आर्थिक असंतुलन की भरपाई करेगा। समाज और साहित्य दोनों जगहों पर मन्नन जैसे लोगों के बारे में कम बातचीत होती है, लेकिन विनोद कुमार शुक्ल जैसे पारखी साहित्यकार ने इस आदमी को अपनी कथा का केन्द्र बिन्दु बनाया है। नज़ीर अकबराबादी अपने 'आदमीनामा' में आदमी के जिन तमाम पहलुओं के बारे में बात करते हैं उसमें इस तरह के आदमी के बारे में भी बात हुई है-

"काँधे पे रख के पालकी हैं दौड़ते कहार
और उस में जो पड़ा है सो है वो भी आदमी
बैठे हैं आदमी ही दुकानें लगा लगा
और आदमी ही फिरते हैं रख सर पे ख़ूनचा।"[5]

मध्यवर्गीयता किस तरह से व्यक्ति के सोच को दुविधाग्रस्त बना देती है, इसकी बानगी संग्रह की दूसरी कहानी 'बोझ' में दिखती है-जिसमें एक आदमी कमरे में ताला लगाकर दफ़्तर के लिए निकल जाता है और सरे-राह उसे यह अनिश्चितता सताने लगती है कि उसने कमरे में ताला नहीं लगाया है और पिछले दिन ही महीने का जो वेतन मिला है, जिसे उसने अपनी पेटी में रख छोड़ा है जो गुम हो सकता है, लेकिन जब वह लौटकर आता है तो अपने कमरे का ताला बंद पाता है।

यह खास किस्म की अनिश्चितता परिस्थितियों से पैदा होती है। मध्यवर्ग का व्यक्ति जिसकी आकांक्षाएं तो बड़ी हैं परंतु संसाधन अपेक्षाकृत न्यून है, इसलिए उसे भय है कि जो थोड़ा-बहुत उसने संसाधन जुटाए भी हैं, वह कहीं खो न जाए। यह कहानी इसी मध्यवर्गीय द्वंद पर आधारित है, जिसमें पड़कर व्यक्ति चाहकर भी आगे नहीं बढ़ पा रहा। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की कविता 'एक मध्यवर्गीय व्यक्ति का बयान' कुछ-कुछ इसी बारे में है-

'बहुत कुछ छोड़ना चाहता था
लकीर की तरह बढ़ना चाहता था
मगर एक वृत्त बनकर रह गया

वही-वही गलियां
वही-वही मोड़
वही-वही धागे
वही-वही जोड़

जीवन के सपने रह गये अधूरे
नही बना सका कोई भी जगह इतिहास में
जूझता रहा निरंतर आकाश से

नहीं मिली शांति
नहीं मिली भ्रांति
व्यर्थ हो गया जीवन
धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष कुछ न मिला...'[6]

इसी क्रम में अगली कहानी आती है 'मछली', जिसमें मूल कथ्य को मछली के प्रतीक के माध्यम से कहने की कोशिश की गई है। एक परिवार किस तरीके से अपनी बेटी को प्यार करने से रोकता है और उसे प्रताड़ित करता है, इसका चित्रांकन किया गया है जबकि इसी तरह के प्रतिबंधन समान स्थिति में इसी तरह के परिवार में बेटों पर लागू नहीं होते। लैंगिक भेदभाव और व्यवहार का यह अंतर काफी सूक्ष्मता से इस कहानी में रेखांकित हुआ है।

कहानियां लिखते वक्त विनोद कुमार शुक्ल अपने मुख्य विषय पर तो सूक्ष्मता से लिखते ही हैं, साथ ही साथ कहानी की परिधि के विस्तार के क्रम में जिन दूसरी चीजों पर भी व्यंग्य करते हैं, वह तीक्ष्ण होता है। इसी कहानी में जब वह अपने पात्र के माध्यम से अपने पिता द्वारा खरीदी गई मछली को झोले में रखकर ला रहा था और जब उससे कहलवाते हैं कि 'झोले में मछलियों के तड़प के झटके मैं जब तब महसूस करता था'। 7तो इस अभिधार्थ से पृथक इसी कहानी की स्त्री पात्र 'दीदी' के जीवन की घुटन व बाधित स्वतंत्रता के भाव को भी आवाज़ दे रहे होते हैं या जब बच्चे के माध्यम से यह कहलवाते हैं कि 'नीचे दबी हुई मछली की आंखों में मैं अपनी छाया देखना चाहता था। दीदी कहती थीं, जो मछली मर जाती है, उसकी आंखों में झांकने से अपनी परछाईं नहीं दिखती'। 8 तो समाज के ऐसे लोगों पर व्यंग्य कर रहे होते हैं जो भौतिक रूप से तो जीवित लेकिन असल में मृतप्राय हैं और किसी काम के नही हैं। इसी संदर्भ में उदय प्रकाश की कविता 'मरना' प्रासंगिक हो उठता है-

"आदमी मरने के बाद
कुछ नहीं सोचता
आदमी मरने के बाद
कुछ नहीं बोलता
कुछ नही सोचने और
कुछ नही बोलने से
आदमी मर जाता है।"[9]

इसी क्रम में अगली कहानी आती है 'झुंड', जो किसी चीज के बारे में नहीं भी है और है भी। इस कहानी का शुरुआती वाक्य है 'मेरे पास समय था'[10] और इसी आधार वाक्य पर आरोहित होकर यह कहानी आगे बढ़ती है। यह कहानी किसी भी चीज के बारे में नहीं है, का अर्थ है कि यह कहानी बहुत सारी चीजों के बारे में हो सकती है या किसी भी एक चीज के बारे में व्यवस्थित तरीके से न होकर अलग-अलग कई चीजों के बारे में बिखराव के साथ उपस्थित हो और विनोद कुमार शुक्ल के लेखन में बिखराव भी एक व्यवस्था की तरह आता है।

'मेरे पास समय था' आधार वाक्य एक गहरे अस्तित्वबोध के साथ आता है। इसका यह अर्थ भी हो सकता है कि आज लोगों के पास समय नही है और जिन चीजों में वे व्यस्त हैं, उनका कोई गहरा आत्मिक अर्थ भी नहीं है। यह तथाकथित व्यस्तता उन अतृप्त भौतिक आकांक्षाओं के निमित्त है, जिनका जीवन के राग से बहुत अधिक संबंध नहीं है। इस कहानी का मूलपात्र जिसके पास समय था, वह कहानी में अपनी तरह से समय का सदुपयोग करना आरंभ कर देता है। अपने आसपास आ-जा रहे लोगों को देखता है, उनके क्रियाकलापों का बारीकी से अवलोकन करता है और उसी दुनिया में गुम हो जाता है। उनके सुख-दु:ख में शामिल होकर वह समृद्ध महसूस करता ही है, साथ ही साथ सामाजिकता की सशक्त नींव भी रखता है। उसे

इस बात से फ़र्क पड़ता है कि एक आदमी दही के दो थैली लेने दो बार बाजार क्यूं जाता है, जबकि एक ही बार में वह दोनों थैलियां खरीद सकता था। दूसरी बार उसे किसने भेजा था, उसकी मां ने या पत्नी ने?क्या उसके घर में दही लाने के लिए बच्चे नही हैं?आदि। वर्तमान समय में जब 'फर्क नहीं पड़ता' एक मुहावरा बनता जा रहा है, इस तरह का फर्क पड़ना एक सुंदर, संवेदनशील और मजबूत समाज के निर्माण में कारगर साबित होगा। मंगलेश डबराल की कविता 'ट्रेन में' को संदर्भित करना यहां जरूरी जान पड़ता है-

"सोती हुई बच्ची को
जगह देने के लिए
एक बूढ़ा अपनी जगह से उठता है
और कांपते पैरों पर खड़ा हो जाता है

बच्ची सोती है गाढ़ी दूध की नींद
बूढ़ा उसे देखता है दूर से
बूढ़ा मुस्कुराता है शर्माता हुआ
बच्ची मुस्कुराती है सोते हुए।"[11]

'पेड़ पर कमरा' इस संग्रह की एक महत्त्वपूर्ण कहानी है, जो मनुष्य और प्रकृति के मध्य मधुर अंतर्संबंधों की नींव पर खड़ी है। यह एक ऐसे आदमी की कहानी है जो एक मकान की दूसरी मंजिल के ऐसे कमरे में रह रहा होता है जो पीपल के एक विशालकाय शाखा के ठीक बगल में होता है, जिस कारण गिलहरियां उसके कमरे की खिड़की से आकर उसके टेबल और बिस्तर पर टहलती रहती हैं। यह क्रियाकलाप उसे सुखद लगता है, किंतु एक दिन जब उसने एक चील को अपने कमरे की खिड़की पर बैठे देखा तो मकान मालिक से खिड़की में सीखचे और पल्ला लगाने के लिए कहता है ताकि चीलें न आ सकें लेकिन गिलहरियां आती रहें। लेकिन मकान मालिक ने सीखचो की जगह केवल पल्ला लगाने का आश्वासन दिया तो वह आदमी कमरा छोड़कर चला जाता है और जिस दूसरी जगह पर वह जाता है, वहां बराबर इस कमरे की गिलहरियां उसे याद आती रहीं। कालांतर में वह एक दिन फिर उसी कमरे में आता है और एक व्यक्ति को रहता हुआ पाता है। यह भी देखता है कि मकान मालिक ने पल्ले और सीखचे दोनों लगवा दिए हैं। जब उसे पता चलता है कि कमरे में रह रहा व्यक्ति थोड़े समय के लिए ही यहां आया है और कुछ ही दिनों में चला जाएगा, तो वह दोबारा यहां रहने का निवेदन मकान मालिक से करता है और सफ़ल होता है। यह कहानी मानव-प्रकृति के जुड़ाव की तो है ही साथ ही साथ मानवीय अतिक्रमण के कारण प्रकृति को हो रहे नुकसान के बारे में भी है, इस तरह अंततः आदमी के नुकसान के बारे में है।

'आदमी की औरत' इस संग्रह में सम्मिलित एक और जरूरी कहानी है, जो पितृसत्तात्मकता के उस विध्वंस के बारे में है, जिसका सर्वाधिक ख़ामियाजा औरत जात ने भुगता है। यह कहानी जयनाथ और

कृष्णाबाई नामक दंपति के बारे में है। कृष्णाबाई के बायें हाथ पर बड़े अक्षरों में उसका नाम 'कृष्णाबाई' गुदा हुआ था, जिस कारण पूरे मोहल्ले को जयनाथ की पत्नी का नाम पता था, जिस कारण वह काफी कुन्ठा में रह रहा होता है और पत्नी के हाथ पर गुदा नाम मिटाना चाहता है। एक बार धारदार ब्लेड से उसने अक्षरों को मिटाना चाहा पर तीव्र रक्तस्राव के कारण सफल नहीं हो सका। फिर उसके एक दोस्त ने अम्ल से जलाकर मिटाने की सलाह दी पर जयनाथ अंततः मानवीयता की ओर बढ़ता है और ऐसा न करके यह स्वीकार कर लेता है मोहल्ले को पत्नी का नाम पता होने से क्या ही हो जाता है।

स्त्रियों के प्रति व्याप्त सामाजिक रुढ़िवादिता की नींव पर खड़ी यह कहानी स्त्री जीवन के संघर्ष को बयां करती है, जो महत्त्वपूर्ण समकालीन कवि कुमार अंबुज की कविता 'खाना बनाती स्त्रियां' की याद भी दिलाती है-

"जब वे बुलबुल थीं उन्होंने खाना बनाया
फिर हिरणी होकर
फिर फूलों की डाली होकर

जब नन्ही दूब भी झूम रही थी हवाओं के साथ
जब सब तरफ़ फैली हुई थी कुनकुनी धूप
उन्होंने अपने सपनों को गूँधा
हृदयाकाश के तारे तोड़कर डाले
भीतर की कलियों का रस मिलाया
लेकिन आख़िर में उन्हें सुनाई दी थाली फेंकने की आवाज़

आपने उन्हें सुंदर कहा तो उन्होंने खाना बनाया
और डायन कहा तब भी
उन्होंने बच्चे को गर्भ में रखकर खाना बनाया
फिर बच्चे को गोद में लेकर..."[12]

'गोष्ठी' एक संक्षिप्त कहानी है, जो वर्तमान समय के हिंदी आलोचकों पर तीखा व्यंग्य करती है, जो अपनी निष्पक्ष और तार्किक आलोचना के लिए कम विख्यात और 'आलोचनात्मक अत्याचार' के लिए अधिक कुख्यात हैं।

संग्रह की अंतिम कहानी 'महाविद्यालय' है, जो स्मृतियों की यात्रा पर ले जाती है। यह ऐसे महाविद्यालय की कहानी है, जो पहले किला था और उसी को अब महाविद्यालय के रूप में रूपांतरित कर

दिया गया है। इसी कारण इसकी आधारभूत अवसंरचना उखड़ी हुई है, इस हद तक कि कभी-कभी प्रधानाचार्य कार्यालय से भी पलस्तर झड़कर तेजी से गिरता है, घायल करने की संभावना के साथ। इसी महाविद्यालय में एक मंदिर भी है और तीन तालाब भी। कक्षाओं में पीछे बैठे हुए विद्यार्थी कई बार अपने दोनों पैर तालाब में डालकर कक्षाएं ले रहे होते हैं। धीरे-धीरे महाविद्यालय के छोर से बढ़ते हुए ये कहानी विस्तारित हो जाती है और कई आयामों को खुद में समेट लेती है। महाविद्यालय में झाड़ू लगाने वाले व्यक्ति को मंदिर में घुसने की मनाही थी, क्योंकि वह निम्न जाति का था। इस तरह यह कहानी दलित विमर्श के बारे में भी एक कहानी कहती चलती है। यह कहानी एक लड़के, जो उसी महाविद्यालय में पढ़ता है, के बाजार के प्रति लगाव के बारे में भी है, जो नियमित रूप से अपने घर के लिए खरीदारी करता है। बाजार से उसका यह लगाव इस कारण नहीं होता कि बाजार जाकर उसे कुछ खाने को मिल जाता, जो घर पर नहीं मिलता बल्कि इस कारण था क्योंकि बाजार की आपाधापी और वहां का जीवन उसे चिंतन के लिए ढ़ेर सारी सामग्री प्रदान करता और उसे जीवन के प्रति उसे रोमांचित करता।

शिल्प और भाषा विनोद कुमार शुक्ल की कहानियों की ताकत है। अज्ञेय ने दूसरे सप्तक की भूमिका में लिखा था कि 'भाषा के विकास के क्रम में कविता की भाषा निरंतर गद्य की भाषा होती जाती है'। विनोद कुमार शुक्ल की कविताओं के बारे में ये बात सीधे तौर पर तो लागू होती ही है परंतु उनके गद्य के बारे में उल्टे तौर पर भी लागू होती है। इनके गद्य में शुरुआत से पर्याप्त काव्यात्मकता मौजूद रही है। 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' में जब वो लिखते हैं-

"दोनों जागे थे और सबकुछ नींद में झूम रहा था। तालाब नींद में तालाब था। आकाश नींद का आकाश था।"[13]

तब वह गद्य लिखते हुए भी कविता ही लिख रहे होते हैं। इस तरह यह भी कहा जा सकता है कि विनोद कुमार शुक्ल के साहित्य में 'विधागत सैद्धांतिकी' भंग हो जाती है। कविता के कायदे-कानून उनके गद्य को शक्ति देते हुए और गद्य के नियम उनकी कविता को समृद्ध करते हुए दिखते हैं और यह सबकुछ बेहद सहजता से हो रहा होता है। आलोचक योगेश तिवारी भी विनोद शुक्ल की भाषा शैली के बारे में कुछ कुछ यही बात कहते हैं-

"आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, अज्ञेय, रेणु आदि के उपन्यासों में भी एक प्रकार की काव्यात्मकता देखने को मिलती है पर विनोद कुमार शुक्ल के यहां यह काव्यात्मकता काफी मुखर रूप में मौजूद है।"[14]

निष्कर्षत:, विनोद कुमार शुक्ल ने कम कहानियां लिखकर भी इस विधा में अपने कहन की एक विशिष्ट शैली का आविष्कार तो किया ही है साथ ही साथ इस विधा को भी अपनी कलात्मकता से समृद्ध किया है। जब कवि नरेश सक्सेना विनोद कुमार शुक्ल के लेखन के बारे में कहते हैं कि "शिल्प और कल्पनाशीलता की ताज़गी से उन्होंने रुढ़िग्रस्त भाषा को नया और अभूतपूर्व शुभ संस्कार दिया है"15 तब वह ठीक ही कह रहे होते हैं। कथाकार विनोद कुमार शुक्ल ने अपनी कहानियों के माध्यम से पाठकों के लिए उनके

कल्पना की दीवार में एक खिड़की खोल दी है, जिससे वे अपने जीवन के आकाश से उल्लास की धरती को खटखटा सकते हैं जो लगातार सिमटती जा रही है।

संदर्भ-

1) https://www.amarujala.com/kavya/kavita/vinod-kumar-shukla-hindi-kavita-ghar-baar-chhod-kar-sanyas-nahin-loonga-2023-09-01

2) https://youtu.be/T0nMcJVJ1IY?si=k44OpvAXMELx9Yyw

3) वही

4) शुक्ल, विनोद कुमार. (2022). *महाविद्यालय.* दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 8

5)https://www.rekhta.org/nazms/aadmii-naama-duniyaa-men-paadshah-hai-so-hai-vo-bhii-aadmii-nazeer-akbarabadi-nazms?lang=hi

6)https://www.hindisamay.com/content/4519/1/%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%B6%E0%A5%8D%E0%A4%B5%E0%A4%A8%E0%A4%BE%E0%A4%A5-%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%A6-%E0%A4%A4%E0%A4%BF%E0%A4%B5%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A5%80-%E0%A4%95%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%A4%E0%A4%BE%E0%A4%8F%E0%A4%81-%E0%A4%8F%E0%A4%95-%E0%A4%AE%E0%A4%A7%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A4%B5%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%97%E0%A5%80%E0%A4%AF-%E0%A4%B5%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A4%95%E0%A5%8D%E0%A4%A4%E0%A4%BF-%E0%A4%95%E0%A4%BE-%E0%A4%AC%E0%A4%AF%E0%A4%BE%E0%A4%A8.cspx

7) शुक्ल, विनोद कुमार. (2022). *महाविद्यालय.* दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 19

8) शुक्ल, विनोद कुमार. (2022). *महाविद्यालय.* दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 21

9) प्रकाश, उदय. (2012). *पचास कविताएं.* दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ. 89

10) शुक्ल, विनोद कुमार. (2022). *महाविद्यालय.* दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 26

11) डबराल, मंगलेश. (2021). *सेतु समग्र:कविता.* नोएडा : सेतु प्रकाशन. पृ. 128

12) अंबुज, कुमार. (2014). *प्रतिनिधि कविताएं.* दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 117

13) शुक्ल, विनोद कुमार. (2021). *दीवार में एक खिड़की रहती थी.* (सातवां संस्करण) दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ. 59

14) तिवारी, योगेश. (2013). *विनोद कुमार शुक्ल : खिड़की के अंदर और बाहर*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन. पृ. 58

15) आजकल. (2022 जनवरी). पृ. 13

महात्मा गांधी की पत्रकारिता में सामाजिक सरोकार : एक अध्ययन

डॉ. सौरभ मालवीय*

malviya.sourabh@gmail.com

सारांश-

महात्मा गांधी गरीबी, अशिक्षा, स्त्री-पुरुष असमानता, आर्थिक विषमता, हिंदू-मुस्लिम विवादों के विरुद्ध प्रभावशाली ढंग से काम करने वाले एक ऐसे योद्धा थे; जिनका नाम और यश भारतवासियों के लिए न सिर्फ उनके जीवनकाल में बल्कि उनकी मौत के बाद भी प्रेरणादायी है। उन्होंने अपनी वकालत, पत्रकारिता, कांग्रेस के सदस्य व बतौर कांग्रेस अध्यक्ष भारतीय समाज की अगवाई की और सदैव समाज के अंतिम पंक्ति में खड़े व्यक्ति के हित में डटे रहे। महात्मा गांधी के समय को उनकी राजनीतिक सक्रियता के साथ-साथ उनकी पत्रकारिता के लिए भी याद किया जाता है। अपने जीवन में उन्होंने भारतीय समाज में जो भी बुराईयां देखीं, मन, कर्म और वचन से उनका विरोध किया। अपनी पत्रकारिता की शुरुआत उन्होंने इंग्लैंड में की। वह वहां टेलीग्राफ और डेली न्यूज जैसे बड़े समाचार पत्रों में लिखते थे। वह अपने जीवन के अनुभवों को अखबारों में बयां करते थे। उनका लेखन लोकप्रियता हासिल करने या धाक जमाने के लिए नहीं था बल्कि सच्चाई को सामने लाना, सच्चाई के प्रति जनता को जागरूक करना और जनहित था। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने 'इंडियन ओपिनियन' समाचार पत्र में रंगभेद और अन्य असमानताओं पर लेखन का सफल प्रयोग किया था। भारत लौटकर गांधी जी ने अंग्रेजी भाषा के अखबार 'यंग इंडिया', हिंदी के 'तरूण भारत', 'गुजराती' के नवजीवन, हरिजन जैसे समाचार पत्रों का संपादन किया। इंग्लैंड और दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी समाचार पत्रों में लेखन और उसका प्रभाव देख चुके थे। अपनी बातों को अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचाने और विभिन्न मुद्दों पर लोगों को आपस में जोड़ने और जागरूक करने के लिए गांधी जी ने पत्रकारिता को हथियार बनाया। दक्षिण अफ्रीका से लौटकर गांधी जी कांग्रेस से गहराई से जुड़ गये और देश भर में संगठन के कामों से घुमते हुए उन्हें समाज में फैली बुराईयों के बारे में पता चला। 1917 में चंपारण में नील की खेती में हो रहे अन्याय के विरुद्ध क्रांति के दौरान गांधी जी का उस क्षेत्र में फैले जातिवाद, छूआछूत, अशिक्षा, गंदगी और बीमारियों से पाला पड़ा। गांधी जी ने वहां इन बुराईयों के खिलाफ आंदोलन खड़ा कर दिया। गांधी जी सत्य और अहिंसा के अनन्य पुजारी थे। प्रत्येक सामाजिक बुराई और ब्रिटिश हूकुमत के अन्याय का गांधी जी ने सत्य और अहिंसा के बल पर आंदोलन खड़ा करके विरोध किया। अपने अनुभवों को गांधी जी ने समाचार पत्रों में बयां किया और सामाजिक जागरुकता और समानता के लिए बिगुल फूंक दी। गांधी जी अंग्रेजों की गुलामी के साथ-साथ

* **एसोसिएट प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ**

इन सामाजिक बुराईयों के खिलाफ भी लेखन किया और आंदोलन चलाया। गांधी जी द्वारा संपादित समाचार पत्रों में उनके द्वारा सामाजिक सरोकारों के लिए किया गए लेखन देखने को मिलता है जिसका व्यापक असर भी जनता पर होता था।

की वर्ड्स- *महात्मा गांधी, सत्य अहिंसा, सामाजिक बुराई, गुलामी, आंदोलन, पत्रकारिता।*

प्रस्तावना-

महात्मा गांधी भारतीय जनमानस में एक आदर्श पत्रकार, कुशल वक्ता, निडर पत्रकार, संघर्षशील राजनीतिज्ञ और सत्य अहिंसा के अनन्य पुजारी के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने ना सिर्फ भारत को गुलामी से आजादी दिलाने के लिए संघर्ष किया बल्कि समाज में फैली अशिक्षा, असमानता, गरीबी, बेरोजगारी, छुआछूत और साम्प्रदायिकता के विरुद्ध राष्ट्रव्यापी आंदोलन चलाया। वह एक उच्च शिक्षित व्यक्ति थे। इंग्लैंड और दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने विभिन्न मुद्दों पर समाज को जागरूक करने और विशेषकर दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों को आपस में जोड़ने के लिए समाचार पत्रों को हथियार बनाया। शाकाहार के प्रति उनका आग्रह था। युवा अवस्था में ही कलम हाथ में ले चुके गांधी ने इंग्लैंड में रहकर 'द वेजीटेरियन' साप्ताहिक समाचार पत्र में नौ लेख शाकाहार पर लिखकर शाकाहार, भारतीय खानपान, धर्म-परंपरा आदि विषयों पर सरल और सहज ढंग से लिखकर लोगों को अपने विचारों से अवगत कराया। इंग्लैंड से पढ़ाई पूरी करने के बाद उन्होंने भारत को अपना ठिकाना बनाने की बजाय दक्षिण अफ्रीका में वकालत की और वहां भी अपने कलम का लोहा मनवाया। भारत वापस लौटने पर उन्हें समाज में अनेकानेक सामाजिक बुराईयां दिखीं। ब्रिटिश हुकूमत में जनता का निर्दयता से शोषण हो रहा था। गांधी जी ने गुलामी और सामाजिक बुराईयों से भारत को छुटकारा दिलाने के लिए न सिर्फ राजनीतिक आंदोलन खड़ा किया बल्कि पत्रकारिता को भी उन्होंने हथियार बनाया। उनके लेखन का व्यापक असर भी होता था। उन्होंने अपने अख़बार यंग इंडिया में घोषणा की थी कि उन्होंने सिर्फ पत्रकारिता (पेशे) के लिए पत्रकारिता नहीं अपनायी बल्कि अपने जीवन के मिशन में इसे एक सहायक उपकरण की तरह इसका उपयोग करते हैं। इस शोध पत्र में महात्मा गांधी की पत्रकारिता में सामाजिक सरोकार को जानने और महत्वपूर्ण तथ्यों को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

शोध का उद्देश्य-

(1) महात्मा गांधी की पत्रकारिता में सामाजिक सरोकार का पता लगाना।
(2) महात्मा गांधी द्वारा पत्रकारिता के माध्यम से उठाए गए प्रमुख मुद्दों को रेखांकित करना।

शोध प्रविधि-

इस शोध पत्र में विभिन्न पुस्तकों की मदद ली गई है और अंतर्वस्तु विश्लेषण शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है।

शोध से संबंधित तथ्य एवं विश्लेषण-

गांधी जी की पत्रकारिता में समाज की चिंता और बदलाव का प्रयास-

महात्मा गांधी अपनी पत्रकारिता और देशसेवा के कारण भारतवासियों के दिलों में आज भी जिंदा हैं। उन्होंने इंग्लैंड में वकालत की पढ़ाई की थी। पढ़ाई के बाद वे दक्षिण अफ्रीका गये और वकालत के साथ-साथ पत्रकारिता की भी शुरुआत की। मुख्य रूप से वह दक्षिण अफ्रीका वकालत करने ही गये थे लेकिन वहां काले लोगों विशेषरूप से भारतवासियों के साथ अन्याय होता देख वह भौचक रह गये और इस तरह के अन्यायों के विरुद्ध उन्होंने संघर्ष करना शुरू कर दिया। लोगों तक अपनी बात पहुंचाना और संगठित करने के लिए गांधी जी को पत्रकारिता के क्षेत्र में कदम रखना पड़ा। वर्ष 1903 में उन्होंने 'इंडियन ओपीनियन' की शुरुआत की। गांधी जी का मानना था कि पत्रकारिता ऐसा काम है जिसमें लोकभावना की अभिव्यक्ति होती है। गांधी जी के अंदर सत्य, अहिंसा, त्याग और भाईचारे की एक ऐसी आकर्षण शक्ति थी जिससे वह लोगों को जोड़ने और सहयोग पाने में कामयाब रहते थे। इसी शक्ति का ही परिणाम था कि उस दौर में जब पत्र-पत्रिकाओं को आज की तरह विज्ञापन का सहारा नहीं था, गांधी जी इंडियन ओपीनियन अख़बार को एक नहीं बल्कि अंग्रेजी, हिंदी, गुजराती और तमिल चार-चार भाषाओं में निकालते थे। भारतवासियों को जागरुक और संगठित करने में उनकी पत्रकारिता काफी सफल रही, लेकिन इंडियन ओपीनियन' को चलाने में गांधी जी को अपना समय ही नहीं बल्कि ढेर सारा निजी पैसा भी लगाना पड़ता था। समाचार पत्रों में स्तंभ लेखन के माध्यम से उन्होंने देशवासियों को साफ-सफाई, स्वानुशासन और नागरिक कर्तव्यों के बारे में जागरुक करने का कार्य किया। गांधी जी पत्रकारिता के माध्यम से जन-जन के बीच सामाजिक बुराईयों से लड़ने की भावना प्रकट करते थे। अपने विचारों को जनता तक पहुंचाने और सत्याग्रह के बारे में जागरुक करने के लिए गांधी जी ने पत्रकारिता को माध्यम बनाया। समाज में दलितों के प्रति समानता और सम्मान की भावना विकसित करने के उद्देश्य से उन्होंने अंग्रेजी में हरिजन, गुजराती में हरिजनबंधु और हिंदी में 'हरिजनसेवक' नामक समाचार पत्र निकाले। इन तीनों ही समाचारपत्रों के माध्यम से गांव-देहात तक में अस्पृश्यता और निर्धनता के विरुद्ध अभियान चलाया। गांधी जी पत्रकारिता को जनसेवा का माध्यम मानते थे, उन्होंने कभी भी इसे आजिविका के रूप में नहीं अपनाया और इस संबंध में मुखर होकर बोलते भी थे। सत्य के प्रयोग नामक अपनी आत्मकथा गांधी जी ने स्पष्ट रूप से कहा कि पत्रकारिता को विज्ञापन के सहारे चलाना उसे बेच देने जैसा है। इसलिए विज्ञापन की बजाय गांधी जी पाठकों को अखबार से जोड़कर, नये पाठक बनाकर और पाठकों के सहयोग से ही पत्रकारिता को जारी रखने के पक्षधर थे। गांधी जी ने हिंद स्वराज में पत्रकारिता के संबंध में अपने विचार प्रकट किया है।

पत्रकारिता पर गांधी जी के विचार-

'नवजीवन' के प्रकाशन के दौर में गांधी जी ने अपनी आत्म कथा में बताय कि जिस तरह आज 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' मेरे जीवन के कुछ अंशों के निचोड़ रूप में हैं, उसी तरह 'इंडियन ओपीनियन' था। उसमें मैं

प्रति सप्ताह अपनी आत्मा उंडेलता था और जिसे मैं सत्याग्रह के रूप में पहचानता था, उसे समझाने का प्रयत्न करता था। जेल के समय को छोड़कर दस वर्षों के अर्थात् सन् 1914 तक के 'इंडियन ओपिनियन' के शायद ही कोई अंक ऐसे होंगे, जिनमें मैंने कुछ लिखा न हो। इनमें मैं एक भी शब्द बिना विचारे, बिना तौले लिखा हो या किसी को केवल खुश करने के लिए लिखा हो अथवा जान-बूझकर अतिशयोक्ति की हो, ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता। मेरे लिए यह अखबार संयम की तालीम सिद्ध हुआ था। मित्रों के लिए वह मेरे विचारों को जानने का माध्यम बन गया था। आलोचकों को उसमें से आलोचना के लिए बहुत सामग्री मिल पाती थी। मैं जानता हूं कि उसके लेख आलोचकों को अपनी कलम पर अंकुश रखने के लिए बाध्य करते थे। इस अखबार के बिना सत्याग्रह की लड़ाई चल नहीं सकती थी। पाठक-समाज इस अखबार को अपना समझकर इसमें से लड़ाई का और दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों की दशा का सही हाल जानता था। इस अखबार के द्वारा मुझ मनुष्य के रंग-बिरंगे स्वभाव का बहुत ज्ञान मिला। संपादक और ग्राहक के बीच निकट का और स्वच्छ संबंध स्थापित करने की ही धारणा होने से मेरे पास हृदय खोलकर रख देने वाले पत्रों का ढेर लग जाता था। उसमें तीखे, कड़वे, मीठे भांति-भांति के पत्र मेरे नाम आते थे। उन्हें पढ़ना, उन पर विचार करना, उनमें से विचारों का सार लेकर उत्तर देना- यह सब मेरे लिए शिक्षा का उत्तम साधन बन गया था। मुझे ऐसा अनुभव हुआ मानो इसके द्वारा मैं समाज मे चल रही चर्चाओं और विचारों को सुन रहा होऊं मैं संपादक के दायित्व को भलीभांति समझने लगा और मुझे समाज के लोगों पर जो प्रभुत्व प्राप्त हुआ, उसके कारण भविष्य में होने वाली लड़ाई संभव हो सकी, वह सुशोभित हुई और उसे शक्ति प्राप्त हुई।

महात्मा गांधी आधुनिक विचारों के अनुशासनप्रिय विभूति-

महात्मा गांधी एक अनुशासनप्रिय और आधुनिक विचारों को मानने वाले व्यक्ति थे। उनका पश्चिम से कोई विरोध नहीं था। वे केवल विचारहीन चीजों के अंधानुकरण का विरोध करते थे। वे कहते हैं- "मैं यह मानने जितना नम्र तो हूं ही कि पश्चिम के पास बहुत कुछ ऐसा है, जिसे हम उससे ले सकते हैं, पचा सकते हैं और लाभान्वित हो सकते हैं। ज्ञान किसी एक देश या जाति के एकाधिकार की वस्तु नहीं है। पाश्चात्य सभ्यता का मेरा विरोध असल में विचारहीन और विवेकहीन नकल का विरोध है, जो यह मानकर की जाती है कि एशिया निवासी तो पश्चिम से आने वाली हरेक चीज की नकल करने जितनी ही योग्यता रखते हैं। मैं दृढ़तापूर्वक विश्वास करता हूं कि यदि भारत ने दुख और तपस्या की आग में से गुजरने जितना धीरज दिखाया और अपनी सभ्यता पर- जो अपूर्ण होते हुए भी अभी तक काल के प्रभाव को झेल सकी है- किसी भी दिशा से कोई अनुचित आक्रमण न होने दिया, तो वह विश्व की शांति और ठोस प्रगति में स्थायी योगदान कर सकती है। महात्मा गांधी ऐसे शक्तिशाली भारत के निर्माण का स्वप्न देखते थे, जो अहिंसा के पथ पर निरंतर अग्रसर रहते हुए वैश्विक मानचित्र पर अपनी पहचान स्थापित करे। वे कहते हैं- "भारत का भविष्य पश्चिम के उस रक्त-रंजित मार्ग पर नहीं है, जिस पर चलते-चलते पश्चिम अब खुद थक गया है। उसका भविष्य तो सरल धार्मिक जीवन द्वारा प्राप्त शांति के अहिंसक पथ पर चलने में ही है। भारत के सामने इस समय अपनी आत्मा को खोने का

खतरा उपस्थित है और यह संभव नहीं है कि अपनी आत्मा को खोकर भी वह जीवित रह सके। इसलिए आलसी की तरह उसे लाचारी प्रकट करते हुए ऐसा नहीं कहना चाहिए कि "पश्चिम की इस बाढ़ से मैं बच नहीं सकता। अपनी और दुनिया की भलाई के लिए उस बाढ़ को रोकने योग्य शक्तिशाली तो उसे बनना ही होगा।"

गांधी जी की राजनीति और पत्रकारिता दोनों में अस्पृश्यता पर चोट-

वर्ष 1915 में गांधी जी दक्षिण अफ्रीका से भारत आए। कांग्रेस की गतिविधियों के दौरान उन्हें पूरे भारत में घूमने का मौका मिलने लगा। इस तरह गांधी जी देश के अलग-अलग हिस्सों में घूमकर लोगों की समस्याओं को समझने लगे। 1917 में चंपारण में नील के किसानों के शोषण के विरुद्ध आंदोलन के दौरान गांधी जी का चंपारण में अशिक्षा, गंदगी, जातिवाद, अस्पृश्यता आदि बुराईयों से सामना हुआ। गांधी जी ने किसानों के शोषण के विरुद्ध आंदोलन के साथ-साथ भारतीय समाज में व्याप्त इन बुराईयों के प्रति भी आंदोलन छेड़ दिया। उन्होंने वहां स्वच्छता, स्त्री शिक्षा, रोजगारपरक शिक्षा आदि के लिए कई कार्यक्रम चलाए। गांधी जी ने लोगों को अपने घर की गंदगी, आस-पास की गंदगी और शौचालय आदि की सफाई स्वयं करने के लिए प्रेरित किया। दलित जाति के लोगों का मंदिर में प्रवेश, कुएं-तालाबों से पानी लेने आदि के निषेध का गांधी जी ने विरोध किया और समानता की बात की। जनता पर उनकी बातों का असर होता था। भारत जैसे देश में अशिक्षा, अस्पृश्यता और असमानता जैसी बुराईयों से निपटना आम बात न थी। गांधी जी इन बुराईयों के खिलाफ निरंतर संघर्ष करते रहे। वह धार्मिक और प्रगतिशील प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उन्होंने दलितों को मंदिरों और स्कूलों में जाने तालाबों-कुओं का इस्तेमाल करने में समानता का अधिकार दिलाने का प्रयास किया। उन्होंने दलित वर्गों को हरिजन कहने का फैसला लिया। यह फैसला अस्पृश्यता के विरुद्ध उनके अभियान का हिस्सा था। गांधी जी दलितों के हित और सम्मान में जो भी सामाजिक कार्य करते थे उसके बारे में अंग्रेजी में प्रकाशित होने वाले हरिजन के अलावा अन्य भाषाओं के अखबारों में विशेषकर हिंदी के हरिजन सेवक, गुजराती के हरिजनबंधु आदि में छपता था। इस तरह अपनी पत्रकारिता और राजनीतिक गतिविधियों के माध्यम से गांधी जी समाज के हर वर्ग में समानता लाने का प्रयास किये। वर्ष 1947 में आजादी मिलने के बाद भी गांधी जी आजादी का जश्न मनाने की बजाय साम्प्रदायिकता के कारण तनावग्रस्त इलाकों में शांति के प्रयास में संलग्न रहे। उनकी पत्रकारिता एवं उनकी राजनीति सामाजिक सरोकारों के लिए पूर्णतः समर्पित रही।

निष्कर्ष-

महात्मा गांधी की सामाजिक सक्रियता, आंदोलन और पत्रकारिता के अध्ययन से यह तथ्य सामने आता है कि वह सत्य और अहिंसा के अनन्य पुजारी थे। उनकी कथनी और करनी सदैव एक रही। वकालत और पत्रकारिता दोनों का उनकी सामाजिक सक्रियता में बराबर असर दिखाई देता है। वह एक कुशल संचारकर्ता के रूप में समाज के हर वर्ग तक अपनी बात पहुंचाते और लोगों को जोड़ते हुए दिखाई देते हैं। अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने, गुलामी और सामाजिक बुराईयों के विरुद्ध बिगुल फूंकने में पत्रकारिता को उन्होंने एक हथियार के रूप

में सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया। इंग्लैड में उन्होंने विभिन्न समाचार पत्रों में लेखन किया और अपने विचारों से लोगों को अवगत कराया। दक्षिण अफ्रीका पहुंचकर उन्होंने 'इंडियन ओपीनियन' नामक समाचार पत्र के माध्यम से ब्रिटिश हुकूमत द्वारा अश्वेत लोगों और खासतौर पर भारतीयों के खिलाफ भेदभाव का विरोध किया। भारत आकर भी एक तरफ वह सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों में सक्रिय रहे दूसरी तरफ इन्हीं आंदोलनों के समानांतर उन्होंने पत्रकारिता के माध्यम से समाज के हर वर्ग को जागरूक करने का प्रयास किया। न सिर्फ गुलामी बल्कि सामाजिक बुराईयों को विरुद्ध लेखन किया। परिणामस्वरूप उन्हें समाज के हर वर्ग का सहयोग मिला और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में अहिंसक आंदोलन खड़ा हो सका, वहीं भारत में जाति-धर्म-सम्प्रदाय में तनाव कम करने, अशिक्षा, गरीबी, असमानता को समाप्त करने और स्त्रियों की शैक्षणिक और सामाजिक स्थिति सुधारने का प्रयास भी गांधी जी ने हरिजन, हरिजन सेवक, हरिजनबंधु, यंग इण्डिया, तरूण भारत आदि समाचार पत्रों के माध्यम से किया।

संदर्भ :-

1. गांधी, महात्मा. (2015). *सत्य के प्रयोग*. दिल्ली : हिंद पॉकेट बुक्स.
2. डॉ आरसु. (2018). *महात्मा गांधी साहित्यकारों की दृष्टि में*. दिल्ली : साहित्य प्रकाशन.
3. गांधी, महात्मा. (2008). *मेरे सपनों का भारत*. दिल्ली : राजपाल एंड सन्स.
4. मंत्री, गणेश. (2017). *गांधी और आंबेडकर*. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.
5. सिंह, शंकरदयाल सिंह. (2018). *महात्मा गांधी, प्रथम दर्शन: प्रथम अनुभूति*. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.;

छात्रों के सर्वांगीण विकास में कला शिक्षा की भूमिका

विष्णु कुमार* **प्रो. ओमप्रकाश भारती†**

vishnu.kumar1696@gmail.com **opbharti68@gmail.com**

सारांश

शिक्षा एक प्रक्रिया है जो हमें न केवल ज्ञान के क्षेत्र में उन्नति करती है बल्कि हमारे विकास को समृद्ध बनाने में भी सहायक होती है। विभिन्न विषयों और क्षेत्रों में शिक्षा के माध्यम से छात्रों को एक समग्र विकास का अवसर प्रदान किया जाता है जो उन्हें समाज में उच्च स्तरीय नागरिकता के साथ निपुण बनाता है। नई शिक्षा नीति 2020 में भी भारत सरकार द्वारा शिक्षा में कला शिक्षा की महत्वता को समझते हुए प्रमुख रूप से इसे शामिल किया गया है। इस विचाराधीन शोधा लेख में शिक्षा में कला की प्रसांगिकता पर प्रकाश डाला गया है और यह अध्ययन करने कि कोशिश की गई है कि शिक्षा के इस क्षेत्र में कला के अध्ययन से क्या लाभ हैं तथा छात्रों के पूर्णावस्था विकास में इसकी किस प्रकार भूमिका है। भारत सरकार ने नई शिक्षा नीति 2020 में कला शिक्षा को किस रूप से लिया गया है इसका भी विश्लेषण किया गया।

बीजक शब्द – कला शिक्षा, सृजनात्मकता, शिक्षा प्रणाली, रचनात्मकता, नई शिक्षा नीति (NEP)

शोध प्रश्न:

1. क्या कला शिक्षा, छात्रों के पूर्णावस्था विकास में एक महत्वपूर्ण कारक है?
2. नई शिक्षा नीति 2020 में कला शिक्षा की क्या भूमिका है ?
3. कला के माध्यम से कैसे सृजनात्मकता विकसित की जा सकती है और इसका शिक्षा में महत्व क्या होता है?
4. कला की शिक्षा कैसे छात्रों के सामाजिक और नैतिक विकास में मदद करती है?
5. कला शिक्षा के माध्यम से संविधानिक और संचार कौशल कैसे प्रशिक्षित किए जा सकते हैं?

शोध प्रविधि

1. प्राथमिक स्रोतों के अध्ययन: पुस्तकालय और शोध लेखों की समीक्षा करके आपके शोध प्रश्नों को समझने के लिए शोध का आधार बनाया गया है।
2. इस लेख में गुणात्मक शोध प्रविधि तथा अंतर्वस्तु विश्लेष्ण प्रविधि का प्रयोग किया गया है।
3. तथ्यों के लिए विषयाधारित प्रकाशित ग्रंथों का उपयोग किया गया है इसमें तथ्यों की विवेचना करते हुए व्यख्यायित किया गया है।

* **पीएच. डी. शोधार्थी, नाट्यकलाशास्त्र विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा**

† **विभागाध्यक्ष, प्रदर्शनकारी कला विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा**

प्रस्तावना

शिक्षा एक सशक्त मंच है जो हमें न केवल ज्ञान का स्रोत प्रदान करती है बल्कि हमारे पूर्णावस्था विकास को संपूर्ण रूप से बढ़ावा देती है। कला कि विविध विधाएं जैसे कि चित्रकला, संगीत, नृत्य, थिएटर, आदि इस विकास को पूर्णता के साथ बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कला की शिक्षा छात्रों को साहित्यिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्वपूर्ण ज्ञान प्रदान करती है। छात्र विभिन्न कला विधाओं के माध्यम से अपनी सांस्कृतिक पहचान को समझते हैं और उसे मान्यता और सम्मान के साथ बनाए रखने की क्षमता विकसित करते हैं। कला के माध्यम से शिक्षा छात्रों को आपसी सहभागिता और समन्वय की क्षमता विकसित करने में मदद करती है। कला की गतिविधियाँ समूह में काम करने, साझा उद्देश्यों के लिए सहयोग करने, और अन्यों के साथ संवाद करने का मार्ग दर्शाती हैं। छात्रों को सामाजिक और कला समुदाय के साथ जुड़ने का अवसर मिलता है, जो उनकी रचनात्मक और व्यापारिक क्षमताओं को विकसित करने में मदद करता है। इसके अलावा कला की शिक्षा छात्रों के लिए अनुभवशीलता, उत्पादकता, समस्या हल करने की क्षमता, क्रियात्मकता और अभिव्यक्ति की क्षमता को विकसित करने में भी मदद करती है। यह छात्रों को स्वतंत्र और सक्रिय मानव के रूप में विकसित करती है।

शिक्षा में कला शिक्षा का समावेश करने से छात्रों को विभिन्न अवसर प्रदान होते हैं जो स्वयं-व्यक्ति, बुद्धि-विकास, समस्याओं का समाधान करने की क्षमता और सामान्य जीवन में सकारात्मकता को प्रोत्साहित करने की प्रेरणा देते हैं। इस लेख में हम शिक्षा में कला की महत्ता पर गहराई से विचार करेंगे और यह देखेंगे कि यह छात्रों के पूर्णावस्था विकास को कैसे समर्पित करती है।

रचनात्मकता का प्रोत्साहन

कला शिक्षा छात्रों के पूर्णावस्था विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, विशेषकर रचनात्मकता के प्रोत्साहन के माध्यम से। कला शिक्षा छात्रों को स्वतंत्र विचार करने, अपनी भावनाओं को व्यक्त करने, समस्याओं का समाधान करने, और नवीनता को प्रोत्साहित करने की क्षमता प्रदान करती है। इसके अलावा, कला शिक्षा छात्रों को संवाद करने, साझा करने और समाज के साथ अंतर्निहित होने की क्षमता भी विकसित करती है।

कला शिक्षा के माध्यम से छात्रों को विभिन्न कला और साहित्यिक कार्यक्रमों में शामिल होने का मौका मिलता है जिनमें चित्रकला, संगीत, नाटक, नृत्य, और कविता शामिल हो सकती है। इन कार्यक्रमों के माध्यम से छात्रों को अभिव्यक्ति का मार्ग मिलता है। जिससे उनकी संवेदनशीलता, स्वतंत्रता, और सहजता को संरक्षित किया जाता है। कला शिक्षा छात्रों की रचनात्मकता को विकसित करती है और उन्हें अलग-अलग पहलुओं को देखने और उनकी समस्याओं का समाधान करने की क्षमता के माध्यम से छात्रों को नई और अद्वितीय विचारों की प्रेरणा मिलती है। वे समस्याओं को अलग दृष्टिकोण से देखने और समाधान करने की क्षमता विकसित करते हैं। कला शिक्षा छात्रों को विभिन्न रंग, रूप, और आवाज के माध्यम से अपने भावों को

व्यक्त करने का मौका देती है। छात्र अपनी संवेदनशीलता को व्यक्त करके रचनात्मक तरीके से सोचने और व्यक्त करने का भी अभ्यास करते हैं।

छात्रों को रचनात्मकता के माध्यम से स्वतंत्रता का अनुभव होता है। कला शिक्षा छात्रों को स्वतंत्र रूप से सोचने और कल्पना करने की प्रेरणा देती है। यह उन्हें खुद के विचारों, रचनात्मक प्रक्रियाओं और नये आविष्कारों के प्रति आत्मविश्वास का अनुभव कराती है।

इसके साथ ही कला शिक्षा छात्रों को सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताओं के साथ जुड़ने का अवसर देती है। रचनात्मक कार्यक्रमों में भाग लेने से, छात्र साझा करने, सहयोग करने इन सबसे आपसी समझदारी की क्षमता विकसित होती है। वे अपनी कला को साझा करके समुदाय के साथ जुड़ते हैं और उन्हें अपने विचारों और अनुभवों का अद्वितीय दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। इससे उन्हें सामाजिक संबंधों की मजबूती मिलती है और वे सामाजिक जीवन में सक्रिय भूमिका निभा सकते हैं।

कुछ उदाहरण कला शिक्षा के प्रोत्साहन के तरीकों के निम्नलिखित रूप हो सकते हैं:

- **कला प्रदर्शन:** छात्रों को नाटक, नृत्य, संगीत, कविता पाठ, चित्रकला प्रदर्शन, आदि में हिस्सा लेने का मौका देना। इससे उन्हें अभिनय कौशल, रचनात्मकता और अभिव्यक्ति की क्षमता का प्रदर्शन करने का अवसर मिलता है।
- **कला कार्यशालाएं:** कला कार्यशालाओं का आयोजन करना, जहां छात्र संगीत, नृत्य, चित्रकला, कविता, कहानी लेखन, आदि के माध्यम से रचनात्मकता को सीखते हैं और उन्हें संगठनात्मक कौशलों का अभ्यास करने का मौका मिलता है।
- **सांस्कृतिक कार्यक्रम:** सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करना, जहां छात्रों को अपनी सांस्कृतिक पहचान को समझने और व्यक्त करने का मौका मिलता है। इसमें विभिन्न सांस्कृतिक कार्यों, प्रस्तुतियों, नुक्कड़ नाटकों, संगीत और नृत्य प्रदर्शनों को शामिल किया जा सकता है।
- **कला की अध्यापन पद्धति:** कला शिक्षा में रचनात्मकता को प्रोत्साहित करने के लिए विशेष पाठ्यक्रम, गतिविधियाँ, और कला शिक्षा की विधियाँ अपनाना। इसमें संगीत, नृत्य, रंगमंच, कविता पाठ, और चित्रकला के माध्यम से छात्रों की सृजनात्मकता और अभिव्यक्ति को समझाने का प्रयास किया जा सकता है।

कला शिक्षा छात्रों को सांस्कृतिक जागरूकता के साथ समाज की समग्र विकास को प्रोत्साहित करने में मदद करती है। इससे छात्रों की अभिव्यक्ति. सोचने की क्षमता, संगठनात्मक कौशल, समस्या समाधान कौशल, और सहभागिता कौशल में सुधार होता है।

संयोजन कौशल

कला शिक्षा छात्रों के पूर्णावस्था विकास में संयोजन कौशल की प्रगति कराती है। संयोजन कौशल छात्रों की क्रियाशीलता, सहभागिता, समानोन्नति, और एकीकरण की क्षमता को विकसित करता है। निम्नलिखित कुछ तत्व कला शिक्षा के माध्यम से संयोजन कौशल की प्रगति कराते हैं:

- सहभागिता के माध्यम से गतिशील शिक्षा: कला शिक्षा में, छात्रों को सामूहिक और सहभागी गतिविधियों में शामिल किया जाता है। विभिन्न कला रूपों के माध्यम से नाटक, ग्रुप नृत्य, और कला प्रदर्शन में छात्रों को समान रूप से भाग लेने का अवसर मिलता है, जिससे उनकी सहभागिता कौशल में सुधार होता है।
- समरसता का विकास: कला शिक्षा छात्रों को विभिन्न कलाओं के माध्यम से समरसता और संगति की भावना विकसित करती है। छात्रों को विभिन्न कला रंगों, ढंगों, और भाषाओं के साथ काम करने का मौका मिलता है, जिससे उनकी संयोजन कौशल में सुधार होता है और वे अलग-अलग धाराओं को मिलाकर एक साथ कार्य करने की क्षमता विकसित करते हैं।
- सांस्कृतिक विविधता की समझ: कला शिक्षा छात्रों को सांस्कृतिक विविधता की समझ प्रदान करती है। विभिन्न कला रूपों के माध्यम से, छात्र सांस्कृतिक विभिन्नता को समझने और सम्मान करने के लिए संयोजन कौशल विकसित करते हैं।

आत्मविश्वास और स्वाधीनता

कला शिक्षा छात्रों के पूर्णावस्था विकास में आत्मविश्वास और स्वाधीनता की महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कला के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने से छात्रों को अपने रचनात्मक और निर्माणात्मक क्षमताओं को विकसित करने का अवसर मिलता है जिससे उनका आत्मविश्वास बढ़ता है। इसके अलावा कला शिक्षा छात्रों को स्वतंत्रता और स्वाधीनता के महत्व को समझने और व्यक्त करने में मदद करती है।

यहां कुछ मुख्य कारक हैं जो आत्मविश्वास और स्वाधीनता की संवर्धना में कला शिक्षा की भूमिका निभाते हैं: -

- स्वतंत्र अभिव्यक्ति: कला शिक्षा छात्रों को स्वतंत्र रूप से अपनी भावनाओं, विचारों, और रचनात्मकता को व्यक्त करने का अवसर प्रदान करती है। इससे छात्रों का आत्मविश्वास मजबूत होता है, क्योंकि उन्हें महसूस होता है कि उनकी रचनात्मकता महत्वपूर्ण है और उन्हें सुनिये जाने का अधिकार है।
- स्वाधीनता के भाव: कला शिक्षा छात्रों को स्वतंत्रता के महत्व को समझने में मदद करती है। कला के माध्यम से, छात्रों को अपने विचारों और भावनाओं को स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने की प्रेरणा मिलती है, जिससे उनकी स्वाधीनता और निर्णय-लेने की क्षमता मजबूत होती है।
- निर्माणात्मक अभिव्यक्ति: कला शिक्षा छात्रों को निर्माणात्मक अभिव्यक्ति का मार्ग प्रदान करती है। छात्र विभिन्न कला रूपों के माध्यम से अपनी विचारधारा, भावनाएं, और दृष्टिकोण को व्यक्त कर सकते हैं, जिससे उन्हें अपनी प्रतिभा पर आत्मविश्वास मिलता है।
- सफलता और प्रतिस्पर्धा का अनुभव: कला शिक्षा के माध्यम से, छात्रों को सफलता और प्रतिस्पर्धा का अनुभव होता है। कला की विविध विधाओं में प्रस्तुतियाँ और प्रदर्शनियों का आयोजन छात्रों को

आपसी मुकाबला करने का अवसर प्रदान करते हैं। जिससे उनका आत्मविश्वास विकसित होता है और वे स्वाधीनता के साथ अपनी कला को प्रदर्शित कर सकते हैं।

इस प्रकार, कला शिक्षा छात्रों को आत्मविश्वास की संरचना करने और स्वाधीनता का भाव जागृत करने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। यह छात्रों को उनकी स्वतंत्रता और विचारशक्ति की पहचान कराकर सामर्थ्यपूर्ण एवं सफल व्यक्तित्व के निर्माण में सहायता करती है।

नई शिक्षा नीति 2020 में 'कला शिक्षा'

न्यू एजुकेशन पॉलिसी 2020 में कला शिक्षा को एक महत्वपूर्ण और आवश्यक आयाम के रूप में मान्यता दी गई है। इस पॉलिसी के अनुसार, कला शिक्षा का उद्देश्य छात्रों को सांस्कृतिक जागरूकता, रचनात्मकता, सृजनशीलता, और भावनात्मक विकास को समर्पित करना है। कला शिक्षा के माध्यम से छात्रों को स्वतंत्रता के साथ अपनी भावनाएं व्यक्त करने और सृजनात्मक चिंतन का प्रदर्शन करने का मौका मिलता है। इससे वे सामाजिक, मानसिक, और आध्यात्मिक रूप से समृद्ध होते हैं और अपने संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास करते हैं। न्यू एजुकेशन पॉलिसी 2020 कला शिक्षा को समग्र शिक्षा प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करती है और छात्रों को रचनात्मक और सांस्कृतिक रूप से सक्षम बनाने में मदद करती है।

दिए गए बिंदुओं में न्यू एजुकेशन पॉलिसी 2020 में कला शिक्षा का रूप वर्णित किया गया है:

- इंटीग्रेटेड पाठ्यक्रम: नई शिक्षा नीति के अनुसार, कला शिक्षा को शिक्षा के मुख्य पाठ्यक्रम में एकीकृत किया जाना है। इसका उद्देश्य कला को अन्य विषयों के साथ संगठित रूप से जोड़कर छात्रों की समग्र विकास को सुनिश्चित करना है।
- रचनात्मक अभिव्यक्ति: न्यू एजुकेशन पॉलिसी 2020 कला शिक्षा को छात्रों के रचनात्मक अभिव्यक्ति को सुदृढ़ करने के लिए महत्वपूर्ण मानती है। यहां पर छात्रों को कला के विभिन्न क्षेत्रों में स्वतंत्रता, संगठनात्मक कौशल, और सृजनात्मकता की संवेदनशीलता का विकास करने के लिए अवसर प्रदान किया जाता है।
- सांस्कृतिक जागरूकता: न्यू एजुकेशन पॉलिसी कला शिक्षा में सांस्कृतिक जागरूकता को बढ़ावा देने को गंभीरता से लेती है। इसका उद्देश्य छात्रों को भारतीय सांस्कृतिक विरासत के प्रति जागरूकता दिलाना है और स्थानीय कला प्रथाओं, लोक संस्कृतियों, और सांस्कृतिक अभ्यासों को पाठ्यक्रम में शामिल करके छात्रों की पहचान को विकसित करना है।
- कला कौशल विकास: नई शिक्षा नीति कला शिक्षा के पेशेवर विकास को महत्वपूर्ण देखती है। इसके अंतर्गत कला शिक्षा के लिए पेशेवर विकास कार्यक्रम, वर्कशाप, और प्रशिक्षण कार्यक्रमों की प्रदान की जाती है ताकि छात्रों के शिक्षा कौशल और कला ज्ञान में सुधार हो सके।

- नई शिक्षा विधियाँ: न्यू एजुकेशन पॉलिसी 2020 कला शिक्षा के लिए नई शिक्षा विधियों का उपयोग करने की सलाह देती है। इसके अंतर्गत कला शिक्षा में परियोजनाओं, गतिविधियों, और प्रयोगों को शामिल किया जाता है ताकि छात्रों की सृजनात्मकता, समस्या समाधान कौशल, और विचारशीलता में सुधार हो सके।

न्यू एजुकेशन पॉलिसी 2020 कला शिक्षा का सामरिक विकास, सृजनात्मकता, और सांस्कृतिक बौद्धिकता के माध्यम से प्रोत्साहित करने का उद्देश्य रखती है। इसका ध्यान रचनात्मक अभिव्यक्ति, संगठनात्मक कौशल, सांस्कृतिक जागरूकता, और पेशेवर विकास पर होता है। न्यू एजुकेशन पॉलिसी 2020 के अनुसार कला शिक्षा को छात्रों के सम्पूर्ण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका मिलती है। इसके माध्यम से छात्रों की सांस्कृतिक जागरूकता, स्वतंत्रता, साझा बातचीत, और सहभागिता कौशल विकसित होते हैं। न्यू एजुकेशन पॉलिसी 2020 छात्रों को संपूर्ण व्यक्तित्व के साथ शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य रखती है ताकि वे 21वीं सदी के चुनौतियों का सामना करने में सक्षम हों और समाज के लिए योगदान कर सकें।

निष्कर्ष

कला शिक्षा छात्रों के सामाजिक, भावात्मक, मनोवैज्ञानिक, और सामरिक विकास को संपूर्ण करने में मदद करती है। यह उन्हें सुंदरता, समग्रता, और जीवन के विभिन्न पहलुओं को समझने और मूल्यांकन करने की क्षमता प्रदान करती है। इसके अलावा, कला शिक्षा छात्रों के संवेदनशील ज्ञान, सामरिक सहभागिता, सामाजिक संबंध और समरसता को भी बढ़ाती है। छात्र कला के माध्यम से संगठित और संवादात्मक अनुभव प्राप्त करते हैं और समाज में सक्रिय भूमिका निभाने की क्षमता विकसित करते हैं।

कला शिक्षा को शिक्षा प्रणाली में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होना चाहिए क्योंकि यह छात्रों के समग्र विकास को प्रोत्साहित करने में मदद करती है। इसके लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं:

- शिक्षा पाठ्यक्रमों में सम्मिलित करना: कला शिक्षा को स्कूलों और शिक्षा संस्थानों के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित करना आवश्यक है। कला विषयों को अलग-अलग विषयों के साथ संयोजित करना चाहिए और कला के विभिन्न आयामों को सम्मिलित करने के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम बनाए जाने चाहिए।
- कला शिक्षकों की प्रशिक्षण: कला शिक्षा को सुधारने का एक महत्वपूर्ण कदम है कि कला शिक्षकों को उच्च स्तरीय प्रशिक्षण प्रदान किया जाए। शिक्षकों को संगीत, नृत्य, चित्रकला, नाट्य, और अन्य कला क्षेत्रों में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए ताकि वे छात्रों को उच्चतर स्तर की कला शिक्षा प्रदान कर सकें।
- प्रयोगात्मक अभियांत्रिकी का उपयोग: कला शिक्षा में प्रयोगात्मक अभियांत्रिकी का उपयोग करके छात्रों को रोमांचकारी और संगठित अभ्यास का मार्ग प्रदान किया जा सकता है। इससे वे कला के माध्यम से समस्याओं का समाधान करने, अद्यतन करने, और नवीनता लाने का अवसर प्राप्त करते हैं।

- सहयोगी शिक्षा पद्धति: कला शिक्षा को शिक्षा पद्धतियों में सहयोगी ढंग से सम्मिलित किया जाना चाहिए। इससे छात्रों को समस्याओं का हल निकालने, समृद्ध कला अनुभव करने, और विशेष रूप से विचारशक्ति को विकसित करने का मौका मिलता है।
- कला के लिए उद्यमीता का प्रोत्साहन: कला के क्षेत्र में छात्रों के उद्यमीता को प्रोत्साहित करने के लिए, कला प्रतियोगिता, प्रदर्शन, और कला समारोह आयोजित किए जा सकते हैं। इससे वे अपनी कला क्षमताओं को विकसित करने, अभिव्यक्ति करने, और समस्याओं का हल निकालने का संकल्प बना सकते हैं।

इन सुधारों के माध्यम से, कला शिक्षा प्रणाली में स्थान को सुधारा जा सकता है और छात्रों को अधिकतर संबंधित और योग्य कला अनुभवों का मौका मिलता सकता है। इससे उनकी विचारशक्ति, समस्या-समाधान कौशल, और स्वयं सेवा कौशल में सुधार होता है, जो उन्हें समृद्ध, स्वतंत्र, और सक्रिय नागरिकता के रूप में संगठित करता है।

अतः कला शिक्षा छात्रों के सांस्कृतिक जागरूकता को सुदृढ़ करती है, उनकी अभिव्यक्ति और सोचने की क्षमता में सुधार करती है, संगठनात्मक कौशल में विकास करती है, समस्या समाधान कौशल को समृद्ध करती है, और सहभागिता कौशल को सुदृढ़ करती है। कला शिक्षा छात्रों के संपूर्ण व्यक्तित्व विकास का माध्यम और मार्गदर्शन प्रदान करती है।

संदर्भ :-

Dogulas, H. R. & Mills, H. H. (1948). *Teaching in High School*. New-York: The Ronald Press.

Gawri, Kuppuswarmy. &, M. Hariharan. (1980). *Teaching of Music.* New Delhi: Sterling Publications Pvt. Ltd.

Giles, M. M. Cogan, D. & COX. (1991). A Music and Art Program to Promote Emotion Health in Elementary School Children Journal of Music Therapy, Volume 28, Issue 3, Fall 1991, pp. 135-148

अग्रवाल, रमाकांत. कार्डे, शकुंतला. (2017). *शिक्षा में कला: एक उपहार*. रवि प्रकाशन.

आर्थर एल. हेटले. & मारिलिन ए. मोरियो. (2013). *कला और शिक्षा: सृजनात्मकता और जीवन योग्यता की प्रेरणा.* टेलर और फ्रांसिस प्रकाशन

डॉलन, एडवर्ड जी. मारिलिन जी. लोंग. (2007). *कला शिक्षा और शिक्षा के लिए कला: संवेदनशील और रचनात्मक विचार*. प्रिंस्टन बुक्स.

परांजपे, श्रीधर शरतचंद्र. (2004). *संगीत-बोध*. भोपाल : मध्य प्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी.

स्टेवनसन, मारिलिन. (2011). *कला शिक्षा का मानव द्वारा विकास : संवेदनशीलता, संयोजन और सृजनात्मकता.* टेलर – फ्रांसिस प्रकाशन.

विचार पुँज : आचार्य विनोबा और राष्ट्र निर्माण

रमेश कुमार*

rameshkumardemocrat73@gmail.com

सारांश

भारतीय ऋषि परंपरा के महत्वपूर्ण विचारक प्रखर, समान सुधारक गंभीर अध्येता, लेखक, स्वतंत्रता सेनानी 'आचार्य विनोबा भावे' महात्मा गाँधी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी के रूप में जीवन पर्यंत मानवता की अपूर्व सेवा की। भूदान, ग्रामदान सर्वोदय, शराबबंदी, चंबल के डाकूओं को समाज की मुख्य धारा में लाना जैसे अनेक सफल अभियान अपनी अहिंसक क्रांति के द्वारा किया। पुनः आपने लोक शाही को सरकार की सत्ता के ऊपर रखते हुए आमजन के परिश्रम को पर्याप्त महत्व दिया।

मूलशब्द *- सत्याग्रह, भूदान, समर्पण, अहिंसा, अनशन, पदयात्रा, अध्यात्म, मानवता, परिवेश*

भूमिका

विनोबा बीसवीं सदी के अद्भुत व्यक्तित्व तथा महान क्रांतिकारी थे। समाज में सकारात्मक परिवर्तन के लिए उनका विश्वास बंदूक की नली पर नहीं बल्कि विचार की शक्ति पर था। हम अपने संस्कार और पूर्वाग्रहों के साये में यांत्रिक क्रियाएं करते जाते हैं। हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव डालने वाले निर्णय भी हम नहीं लेते, दूसरे कोई लेते हैं। ऐसी मानसिक गुलामी से मुक्ति की बात करने वाले व्यक्ति विनोबा है। आपका जन्म 11 सितंबर 1895 को महाराष्ट्र के कोलाबा में गागोजी (वर्तमान गागोडे बुद्रुक) नामक एक छोटे से गाँव में एक चित्तपावन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा बड़ौदा में हुई। बाद में उन्होंने काशी में अध्ययन किया।

प्रखर समाज सुधारक के रूप में

विनोबा सही मायने में विचार पुरुष थे। अकसर माना जाता है कि विचार और कर्म दो अलग-अलग चीजें हैं। लेकिन विनोबा के लिए ये दोनों अभिन्न थे। उनका मानना था कि मनुष्य को कोई विचार पसंद आ गया तो उसके अनुसार क्रिया होगी ही। पुनः विचार की समग्रता से परिवर्तन होगा ही। विचारों के मुताबिक कर्म करना और वह लोगों को समझाना; विनोबा के अनुसार यह मनुष्य का कर्तव्य है। इस संदर्भ में वे साइन बोर्ड का उदाहरण देते हैं। जो यह बताता है कि रास्ता किधर जाता है। कहाँ जाना है, यह आपको तय करना है। यह आपके लिए कोई और नहीं तय कर सकता है। इसी में मनुष्यता का विकास है और मनुष्य की आजादी है। विनोबा मानते थे कि सत्याग्रह में भी मुख्य शक्ति विचार की ही है। आत्म क्लेश कभी-कभी जरूरी हो सकता

* **पीएच. डी. शोधार्थी, इतिहास विभाग, मानसरोवर ग्लोबल युनिवर्सिटी, सिहोर (म.प्र.)**

है, हमेशा नहीं। विनोबा गाँधीजी के चरणों में बैठकर बहुत कुछ सीखा। इसलिए उन्हें गाँधीजी का आध्यात्मिक उत्तराधिकारी भी कहा गया है। महात्मा गाँधी के हत्या के बाद गाँधीमार्गी अनुयायियों ने उनसे ही नेतृत्व की आशा की। उन्होंने ही गाँधी कार्य की कमान संभाली तथा गाँधी के अहिंसक क्रांति के युग कार्य को आगे ले गये। उन्होंने अपने वैचारिक यात्रा में गाँधीवादी मूल्यों के अलावा अन्य विचारों का भी समावेशन किया। विनोबा अपने गहन अध्ययन में भारतीय वाङ्मय के विविध पक्षों को गहराई से समझा। उन्होंने ऋग्वेद का सार निकाला, उपनिषदों का सार निकाला भागवत, मनु स्मृति और शंकराचार्य के मतों से भी चयन किया। धम्मपद की नवरचना की। कुरान और बाईबिल का सार पेश किया। नानक, तुलसीदास और असम के श्री माधवदेव का सार प्रस्तुत किया। महाराष्ट्र के भक्ति आंदोलन के पंचरत्न- ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम और रामदास के वचनों और ग्रंथों से भी बहुत सारे तथ्यों को ग्रहण कर सार ग्रंथ की रचना की। ये सब हमारी अमूल्य धरोहर है। विनोबा मानते थे कि विज्ञान की तरह अध्यात्म का विकास होता रहेगा। उन्होंने अपनी अध्यात्मिक साधना में मैं की जगह हम को स्थान दिया। दूसरी बात मजदूरी की -- विनोबा का मानना था कि श्रम द्वारा जीविका चलाने की हिम्मत अध्यात्म धारकों को भी करनी चाहिए। आज के दौर के तमाम धर्मगुरु आरामदायक जीवन जीते हुए अपने अनुयायियों को इस बात की शिक्षा देते हैं कि भौतिकवाद से दूर रहे तथा ईश्वरत्व में ध्यान लगाएं। यह विरोधाभास नहीं तो और क्या है? यदि यह स्थिति नहीं रहे तो उत्पादक श्रम तथा कर्मयोग विभेद को दूर करने में सहायक होगा। वे धर्म आधारित राजनीति के खतरे से वाकिफ थे। इसलिए विज्ञान व अध्यात्म के संयोग से मानवता के कल्याण की कामना करते थे। विनोबा एक बेहतर शिक्षक भी थे। उन्होंने जिंदगी भर जो काम किया वह एक तरह शिक्षा को ही समर्पित था। उनके विचार में शिक्षा अलग-अलग गाँवों में परिस्थिति और परिवेश के अनुसार अलग-अलग होनी चाहिए (जिसमें स्थानीय लोगों का अभिक्रम व सहभागिता दोनों हो। शिक्षा प्रणाली समाज में मूल्य परिवर्तन के लिए हो ताकि अहिंसक समाज की रचना हो सके। विनोबा के शिक्षा, विचार आज भी प्रासंगिक है।

राजनीतिक क्षेत्र में विनोबा गाँधीजी के पदचिह्नों पर चलते हुए जन शक्ति के विकास पर बल दिया क्योंकि इसके बिना शासन शक्ति दबावमूलक बनी रहेगी। इस परिप्रेक्ष्य में उन्होंने फूल माला का उदाहरण दिया। माला में फूल तो दिखते हैं, धागा नहीं दिखता। उसी तरह समाज में सरकार हो लेकिन वो प्रदर्शित न हो। सब लोग परस्पर मिलकर समान जवाबदेही से अपनी व्यवस्था करें। उनकी स्वराज्य शास्त्र पुस्तक में इस व्यवस्था का जिक्र है जिसे 'सर्वायतन' कहा गया है।

राष्ट्रीय आंदोलन में योगदान

सत्याग्रह गांधी की अद्भुत खोज है तथा यह लोक रणनीति का अभिन्न अंग बन गया है। विनोबा को सत्याग्रह की गहरी सूझ-बूझ थी। वे नागपुर नमक सत्याग्रह, डांडी मार्च, केरल के मन्दिर प्रवेश आंदोलन में सकारात्मक योगदान दिए। अतएव, 1940 के व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन में पहले सत्याग्रही के तौर गाँधी ने विनोबा का चयन किया था। इसी दशक में पाँच साल जेल की सजा के कारण उन्हें आचार्य की उपाधि दी गयी

थी। समरस समाज तथा राष्ट्र निर्माण के लिए वे व्यक्तिगत मालिकी को छोड़ने की कवायद करते रहे। जिसका प्रचार भूदान तथा ग्रामदान के जरिए किया।

आमजन का उत्थान

गौरतलब है कि वर्ष 1951 में तेलंगाना के पोचमपल्ली गांव के हरिजनों के जीविकोपार्जन के लिए 80 एकड़ जमीन प्राप्ति हेतु जमींदारों से अनुरोध किया जो सफल रहा। इस तरह भूदान आंदोलन की शुरुआत हुई। यह आंदोलन अगले 13 वर्षों तक जारी रहा और इस दौरान विनोबा भावे ने देश के विभिन्न हिस्सों में 58741 किलोमीटर दूरी का भ्रमण किया। वे लगभग 4.4 मिलियन एकड़ भूमि एकत्र करने के बाद 1.3 मिलियन गरीब, भूमि हीन किसानों के बीच वितरण दिया। इस प्रकार उन्हें जीविका का स्थायी और प्रतिष्ठित साधन प्रदान किया। यह साम्यवाद के ठीक विपरीत एक बेहतर प्रकल्प था। आज जब भूमि विवादों के तमाम मुकदमे देश की अदालतों में लंबित पड़े है। ऐसे में इसे रक्तहीन कांति का अपूर्व उदाहरण माना जा सकता है। पुनः बेदखली, शराबबंदी और गोहत्या जैसे- मसलों पर उन्होंने सत्याग्रह का समर्थन दिया जिसमें सौम्यता भी निहित रहे। मध्य प्रदेश के चंबल संभाग के जिलों मुरैना, भिंड, श्योपुर में व्याप्त डकैती की भीषण समस्या का अहिंसात्मक ढंग से शांति अभियान के द्वारा निदान एकदम अप्रत्याशित था। विनोबा को 1958 में एशिया के प्रतिष्ठित रेमन मैग्सेसे पुरस्कार से सम्मानित किया गया, जो उन्हें सामुदायिक नेतृत्व की श्रेणी में मिला था। शोषण मुक्त समाज हेतु विनोबा ने जय जगत का नारा दिया और सर्वोदय समाज की स्थापना की। उनके शांति सेना के विचार के मूल में वैश्विक सौहार्द और अहिंसा का भाव प्रमुखता से रहा। आर्थिक परिदृश्य में वे बाजार मुक्ति और कांचन-मुक्ति (भोग विलास रहित जीवन पद्धति) चाहते थे। उनका कहना था कि समुदाय कम से कम अपनी बुनियादी जरूरतों के मामलों में आत्मनिर्भर हो, जिन वस्तुओं के संबंध में ग्राम स्वावलंबन संभव नहीं उसके संबंध में क्षेत्र स्वावलंबन हो। वर्त्तमान में बाजार आधारित अर्थव्यवस्था निर्धारक हो गया कि हम क्या खाएं, क्या खरीदें- कैसे जीएं आदि। शायद विनोबा की दूर दृष्टि इस बात की परख कर ली थी। विनोबा के मान्यतानुसार असली संपत्ति वह है जो श्रम से निर्मित होती है। इसलिए भूदान, ग्रामदान, संपत्तिदान, साधनदान, श्रमदान जैसे अनेक दानों की मांग को उचित बताया पर पैसे के दान को नापसंद किया। वे कहते हैं कि हर व्यक्ति उत्पादक परिश्रम अवश्य करे। पुनः अपने श्रम को समाज के लिए समर्पित करे। इसीलिए विनोबा स्वदेशी पर विशेष बल देते हुए चरखा का बड़े पैमाने पर प्रयोग किया। विनोबा लोकतांत्रिक समझ बढ़ाने की दिशा में बहुमत आधारित निर्णय प्रक्रिया कि जगह सहमति आधारित व्यवस्था पर बल दिया क्योंकि दलित-पिछड़ों की भागीदारी से सम्यक समाज का निर्माण किया जा सकता है। ठीक इससे मिलती-जुलती दूसरी अवधारणा आरक्षण की व्यवस्था से थी। जो कृपा नहीं अपितु भागीदारी को प्रतिबिंबित करती है। दलित-पिछड़ों का मुख्यधारा में आना तथा विकास की प्रक्रिया में वाहक बनना राष्ट्र को निश्चित रूप से मजबूती प्रदान करता है। गाँधीजी ने स्त्रियों की शक्ति को जगाया तथा उन्हें रचनात्मक कार्यों यथा - शराब दुकानों के समक्ष पिकेटिंग के लिए खड़ा दिया। इसी प्रकार विनोबा द्वारा संचालित भूदान हुए के बाद ग्रामदान आंदोलन में

अनेक महिलाओं ने पदयात्रा करते हुए। देश के विभिन्न क्षेत्रों का परिभ्रमण किया। उन्होंने अपने उत्तर भारत की यात्रा के दौरान स्त्री अधिकार की जोरदार वकालत की। पर्दा प्रथा जैसी कुरीतियों पर भी तीखा प्रहार किया। महिलाओं को अध्यात्म से जोड़ने के लिए पवनार (महाराष्ट्र) में ब्रह्मविद्या मन्दिर की स्थापना इसी का प्रतिफल था।

भाषायी एकता के समर्थक

विनोबा बहुभाषी थे तथा देश की भाषायी एकता को बखूबी समझते भी थे। इसलिए गाँधी की भाँति उन्होंने हिंदी को देश की संपर्क भाषा सह राजभाषा के लिए सहर्ष सहमति दी। 1965 का दौर जब हिंदी को राजभाषा बनाया जाना था। तब दक्षिण के राज्यों विशेषकर तमिलनाडु में इसका तीखा विरोध और हिंसात्मक गतिविधियाँ तेज हो गई। ऐसी स्थिति में विनोबा पवनार स्थित अपने आश्रम में अनशन पर बैठ गए तथा इस समस्या के समाधान के लिए त्रिसूत्री भाषा (मातृ भाषा या क्षेत्रीय भाषा, हिन्दी और अंग्रेजी) का प्रारूप दिया। जिसे बाद में कोठारी आयोग ने 1968 में लागू किया। विदित हो कि विनोबा को अनशन से रोकने और मनाने हेतु तत्कालीन गृह मंत्री गुलजारी लाल नंदा पवनार आए थे। ऐसी थी उनकी नैतिक और अध्यात्मिक साधना की ऊँचाई।

रचनाएँ

विनोबा एक गंभीर अध्येता थे। उन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना की जिनमें मराठी में गीताई, हिन्दी में गीता प्रवचन, तीसरी शक्ति तथा भूदान यज्ञ मुख्य है। इस लेखन से उन्होंने अंतरराष्ट्रीय ख्याति पायी। गांधीजी के निजी सचिव महादेव देसाई लिखते हैं कि बापू के शायद ही किसी अनुयायी ने सत्य, अहिंसा के पुजारी और कार्यरत सच्चे सेवक उतने पैदा किए हों, जितने की विनोबा ने पैदा किए हैं।

उनके विचार, वाणी और आचार में जैसा एक राग है वैसा एक राग बहुत कम लोगों में होगा। इस तरह उनका जीवन मधुर और संगीतमय है। इस प्रकार विनोबा ने जीवन के कई क्षेत्रों में मौलिक, वैचारिक तथा व्यावहारिक योगदान दिया। उनका मानना था कि "प्रेम और विचार" से अधिक शक्तिशाली कुछ भी नहीं है। कृतज्ञ राष्ट्र ने वर्धा में उनके देहावसान (15 नवंबर 1982) पश्चात् देश के सर्वोच्च सम्मान भारत रत्न (1983) से विभूषित किया।

संदर्भ

चोलकर, पाराग. (2022, नवंबर). *विनोबा के साथ इतिहासकारों का अन्याय*. सर्वोदय जगत. पृ. 23-25

राजाराम. (संपा). (2015). *आधुनिक भारत के प्रसिद्ध व्यक्तित्व*. स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा. लि.

महत्वपूर्ण व्यक्तित्व. (2022 सितंबर 12). दृष्टि आई.ए.एस.

A STUDY ON THE EFFECT OF ALTRUISTIC BEHAVIOR ON THE HAPPINESS LEVEL OF SCHOOL GOING MALE STUDENTS

Neetu Singh[*]
neetuprakaash@gmail.com

Prerna Jyoti[†]
prernajyoti20@gmail.com

Abstract

Hedonia and eudaimonia are two characteristics of happiness that have been studied since Aristotle, despite the fact that describing and quantifying happiness has always been a difficult endeavor due to its subjective nature. Hedonia is the component of happiness that is concerned with pleasure, whereas eudaimonia is the aspect that is concerned with evaluation, such as how you reflect on the experiences of your life and whether or not you find them to be happy, satisfying, or both. Conversely, altruism is just the quality of giving without expecting anything in return. You should not worry about any of these things, regardless of whether it will help you in any way or not, or whether someone else will aid you in return and what connection exists between happiness and altruism? Acts of kindness have been linked to enhanced pleasure, according to numerous recent studies. A well-known online learning platform, Coursera, offers a course on life's well-being that goes into great length about the relationship between happiness and acts of kindness. The purpose of this study is to determine how altruistic conduct affects male students' happiness levels. Data were gathered using altruism and happiness scales created by Dr. S.N. Rai and Dr. Sanwant Singh, and Dr. Rajiv Lochan Bhardwaj and Dr. Poonam R. Das. Analysis conducted on a total of 55 male ninth-standard students at Gayatri Vidyapeeth Haridwar revealed a significant degree of influence.

Keywords: *Altruism, Happiness, Hedonia, Eudaimonia*

Introduction:

People have many worthwhile goals in life, but happiness is what they want most of all (Diener, 2000). People's perceived well-being in both thoughts and feelings has been defined as the feeling of happiness (Diener, 2000; Kahneman and Krueger, 2006).

[*] **Yoga instructor, Dept. of education, Mahatma Gandhi Antarrashtriya Vidyalaya, Wardha**
[†] **PGDGC, Jamia Milia Islamia, New Delhi**

According to studies on well-being, attributes that are highly regarded by society, such longevity (Danner et al., 2001) and mental health (Koivumaa-Honkanen et al., 2004), are linked to high levels of happiness. Subjective well-being has been defined since the earliest studies as the manner in which people perceive the quality of their life in three distinct but related mental aspects: frequent positive affect, infrequent negative affect, and cognitive assessments of life satisfaction in different domains (partnerships, physical health, and work) Diener (1984, 1994, 2000; Pressman and Cohen, 2005; Argyle et al., 1999; Diener et al., 1999). The aforementioned sources support this assertion. An increasing number of studies have been conducted with the goal of determining the variables that impact happiness, which is defined as subjective well-being. Specifically, the study of happiness is mostly conducted in the context of contemplative practices, which have their roots in ancient wisdom traditions, and positive psychology.

In actuality, hedonism has come to be associated with happiness in modern times, despite the fact that the concept of happiness has a long history dating back to philosophical debates and the pursuit of practical wisdom. It depends on achieving instant gratification, avoiding unpleasant emotions, and having a high level of life satisfaction (Argyle et al., 1999). However, researchers increasingly contend that genuine subjective well-being transcends this constrained perspective and validates an understanding of happiness as a eudemonic undertaking (Ryff, 1989; Keyes, 2006; Seligman, 2011; Hone et al., 2014). People who hold this perspective appear to be more concerned with reaching their full potential, having a very fulfilling life, personal development, and feeling independent (Deci and Ryan, 2008; Ryff, 2013; Vazquez and Hervas, 2013; Ivtzan et al., 2016). Altruism is described as acting in another person's best interest rather than one's own. It is the readiness to put others' needs ahead of one's own, even if doing so puts oneself at a disadvantage. Although people frequently behave selfishly, it also appears that we were made to collaborate with other people. For instance, individuals prioritize compassion over all other qualities when searching for a partner. And that is how while examining various variables affecting happiness it becomes necessary to inquire altruism as well, also Sidi & Reimer 2023 correlate the behavior of helping others being able to generate happiness.

Objective: To determine whether engaging in altruistic behavior has some effect on the happiness level of school going male students.

Hypothesis: The following null hypothesis has been formed in this study.

"There will be no significant effect of Altruistic Behavior on Happiness Level on school going male students."

Methodology:

Sample size**:**

A total sample of 55 male students of 9th standard from Gayatri Vidya Peeth, Haridwar, were taken for this study.

Sampling Technique:

Random samling Technique was used for this study, in which 55 male students of age group 17 to 19 from class 9th of Gayatri Vidya Peeth, Haridwar were selected.

Inclusion Criteria:

- Present during the time of data collection.
- Willing to participate.
- Between the age of 14-16 years

Exclusion Criteria:

- Physical or mentally ill.
- Exercising other techniques for happiness and well-being like /attending Yoga classes etc.

Data Collection Procedure:

- An appointment was fixed with the school principal, and later a suitable time was selected for data collection along with staff volunteers.

- School students were called upon in a well-equipped room, i.e., seating arrangement.
- It was made sure that the room is silent enough, so that the given instructions are audible and understandable.
- Students were given brief intro about researcher, the research topic, its purpose, and why their subjective answers/opinions matter enormously in deriving the result.
- 5 out of total 60 male students were selected as volunteers to make the work of data collection more feasible.
- Students were divided into 4 groups, for feasibility with regard to providing instructions and explaining test items.
- Each student was given a happiness scale, and an altruism scale.
- 4 volunteers, including a staff volunteer, researcher, and 2 of her friends who were volunteering subsequently monitored 4 groups.
- Each group was instructed properly; they were told not to write their names on the sheet.
- Each test item of both the scales were explained to all the groups by the volunteers.
- There was no specific time limit but the students were asked to tick mark the first option that came into their mind.
- Scoring was done according to the manual of the both of the scales accordingly
- All the scores were tabulated in the form of excel sheet in order to conduct further process.

Research Design:

The current study employed ex post facto design, examining how people who engaged in altruistic behavior were likely to be more happy or not.

Research tool:

Happiness scale by Dr. Rajiv Lochan Bhardwaj and Dr. Poonam R. Das.

Altruism scale by Dr. S.N. Rai and Dr. Sanwant Singh.

Statistical Analysis:

The t-test produces two values as its output: t-value and degrees of freedom. The t-value, or t-score, is a ratio of the difference between the mean of the two sample sets and the variation that exists within the data. In this study, Two tailed T-test was used in order to test out the hypothesis.

Results:

Statistical analysis was performed on the data collected from the administered inventories, involving t-tests, standard deviations, and mean calculations. To give a clear picture of the findings, the analysis's findings have been arranged and presented in tabular form.

Group	N	M	SD	df		r	SED	T-test value	Significance
Happiness	55	110.38	11.15	54		0.39	0.64	5.6	Significant at .05 and .01 level
Altruism		40.52	6.12						

Summary of Results:

Null hypothesis is rejected.

In the present study, it was tested out whether altruistic behavior has any significant effect upon happiness level in school going male students, later it was found out that altruistic behavior does has a significant impact on the happiness level, as it was tested upon a sample of 55 male students of Gayatri Vidya Peeth, Shantikunj, Haridwar.

Positive correlation of our independent variable, altruistic behavior, with our dependent variable, Happiness level shows that Altruism does has a significant effect on happiness level. Thus our null hypothesis is rejected as it was proved by analyzing the scores

obtained through statistical tool that happiness is significantly affected by the frequency of altruistic behavior a person shows.

T-test formula was applied, and the value was found to be 5.6, Df = 54, t value needed for significance at this level is smaller than the obtained t test value. Therefore, there is a significant effect of altruistic behavior on happiness level.

Graphical Representation:

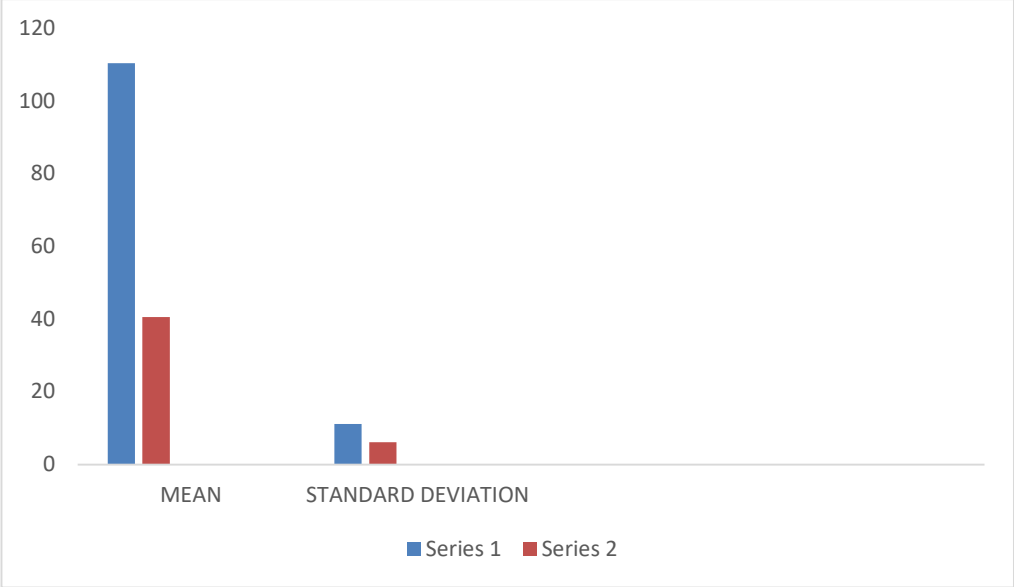

According to the results obtained by the research, It's pretty much evident that trait of altruism or altruistic behavior has a significant effect on the happiness level. There are also some other researches that suggest a positive correlation between altruism and happiness, while correlating happiness with some of the other factors.

There are few researches given below, which suggest so:

A study conducted by Arun Kumar & Vidushi Dixit (2017) published in Indian journal of Gerontology, Including the sample of 153 (M = 84, F = 69) elderly people, age ranging between 60 to 75 years. The data was collected using Self Report Altruism Scale, Oxford Happiness Questionnaire and GHQ – 30.
The results revealed significant gender difference in the scores of altruism but no statistically significant differences were found in the scores of happiness and health. Further results indicated that

among elderly people altruism and happiness were positively correlated with each other.

There are a number of researches indicating a positive correlation, between not just altruism and happiness, but many researches also show that altruism positively impacts, compassion, emotional stability, psychological well being, as well as health and other factors too.

While some researches being on the contrary side and showing no relation of altruism with that of happiness, we still are supposed to consider the positive side of altruism, as a number of researches support the other point of view too. Apparently, wise, it would be to look up to the results of such researches and make some changes to the lifestyle, to the mindset, to the behavior, to the intentions, and to the priorities for a happy and a satisfactory life accordingly. People should start engaging in selfless help of others more often. There should be taken integrated efforts by the society and the subjects to run some settings which offer localized help for people who are in need, and provide them with the basic necessities they are deprived of or whatever kind of help they require, which can easily be provided too.

Moreover, if there's no guarantee that doing all of this would lead to increase in subjective well being and happiness level, at least a portion of the society would be provided with what they need. And while thinking about the other aspect, such small services could curb a lot of problems out of the society. If one doesn't has any resources to provide to a needy individual, there could be arranged some counselling sessions, or talk therapy sort of services could be arranged. For this, trainings of nonprofessionals or para professionals could be provided. Well there are a number of measures that could be taken in order to extend a hand of selfless help to others. And what's sure is definitely beneficial to the society and subjects in many aspects.

Refrences:

Aknin, L. B., Barrington-Leigh, C. P., Dunn, E. W., Helliwell, J. F., Burns, J., Biswas-Diener, R., Kemeza, I., Nyende, P., Ashton-James, C. E., & Norton, M. I. (2013, April). Prosocial spending and well-being: Cross-cultural evidence for a psychological universal. *Journal of Personality and Social Psychology*, *104*(4), 635–652. https://doi.org/10.1037/a0031578

Batson, C.D., (1991). The Altruism Question: Toward a Social-Psychological Answer. Hillsdale, NJ: Lawrence Erlbaum Associates. Batson, C.D., Duncan, B.D., Ackerman, P., Buckley, T., & Birch, K. (1981). Is Empathic Emotion a Source of Altruistic Motivation? Journal of Personality and Social Psychology, vol. 40, no. 2, 1981, pp. 290–302., doi:10.1037//0022-3514.40.2.290.

Batson, C. D., Lange, P. A., Ahmad, N., & Lishner, D. A. (n.d.). Altruism and Helping Behavior. The SAGE Handbook of Social Psychology: Concise Student Edition,241-258. doi:10.4135/9781848608221.n11

Buchanan, K. E., & Bardi, A. (2010). Acts of Kindness and Acts of Novelty Affect Life Satisfaction. The Journal of Social Psychology, 150(3), 235-237. doi:10.1080/00224540903365554

Buss, D.M. (1989). Sex differences in human mate preferences: evolutionary hypotheses tested in 37 cultures. Behavioural and Brain Sciences, 12: 1-49.

Cnaan, R. A., & Goldberg-Glen, R. S. (1991). Measuring motivation to volunteer in human services. Journal of Applied Behavioral Science, 27, 269-284. doi: 10.1177/0021886391273003

Cialdini, R.B., Brown, S.L., Lewis, B.P., Luce, C. & Neuberg, S.L. (1997). Reinterpreting the Empathy-Altruism Relationship: When One Into One Equals Oneness. J Pers Soc Psychol, 73(3), 481-494.

Clary, E. G., Snyder, M., & Stukas, A. A. (1996). Volunteers' motivations: Findings from a national survey. Nonprofit and Voluntary Sector Quar- terly, 25, 485–505

Darwin, C., (1871). The Descent of Man and Selection in Relation to Sex, New York: Appleton. Davis, M. H., Mitchell, K. V., Hall, J. A., Lothert, J., Snapp, T., & Meyer, M. (1999). Empathy, expectations, and situational preferences: Personality influences on the decision to partici-pate in volunteer helping behaviors. Journal of Personality, 67, 469-503. doi: 10.1111/1467-6494.00062

Deci, E. L., & Ryan, R. M. (1985). Intrinsic Motivation and Self-Determination in Human Behavior.NewYork: Plenum Press. http://dx.doi.org/10.1007/978-1-4899-2271-7

Dunn, E. W., & Norton, M. I. (2013). How to Make Giving Feel Good. Retrieved from https://greatergood.berkeley.edu/article/item/how_to_make_giving_feel_good.

Goetz, J. L., Keltner, D., & Simon-Thomas, E. (2010). Compassion: An evolutionary analysis and empirical review. Psychological Bulletin, 136(3), 351.

Hall, K. (2017.). The Importance of Kindness. Retrieved from https://www.psychologytoday.com/us/blog/pieces-mind/201712/the-importance-kindness Hobbes, T. (1651). Leviathan.

Keltner, D. (2015). Dacher Keltner - Survival of the Kindest. The Mind Science Foundation. Retrieved from https://www.youtube.com/watch?v=R8SVyHS3jZU

Klein, S., & Dollenmayer, D. (2014). The survival of the nicest: How altruism made us human and why it pays to get along. Brunswick, Melbourne, Vic.: Scribe Publications. Kolm, S., & Ythier, J. M. (2006). Handbook of the economics of giving, altruism and reciprocity. Foundations. Amsterdam: Elsevier.

Lishner, D., & Stocks, E. (2016). Altruism. Encyclopedia of Mental Health,54-57. doi:10.1016/b978-0-12-397045-9.00199-3

Luks, A. (1988). Helper's High: Volunteering makes people feel good physically and emotionally. And like "runner's calm," it's probably good for your health. Psychology Today, 22(10), 34-42 Luks, A., & Payne, P. (2001). The healing power of doing good: The health and spiritual benefits of helping others. Lincoln, NE: IUniverse.com

Merriam-Webster. (n.d.b). Altruism. Retrieved from https://www.merriam-webster.com/dictionary/altruism

Midlarsky, E., & Kahana, E. (1994). Altruism in later life. Thousand Oaks, CA: Sage.

Penner, L. (2002). Dispositional and organizational influences on sustained volunteerism: An interactionist perspective. Journal of Social Issues, 58, 447-467. doi: 10.1111/1540-4560.00270

संगीत एक सर्वश्रेष्ठ कला

डॉ. नुतन कुमारी*

nutankumari2587@gmail.com

कला मानव सभ्यता का एक अभिन्न अंग है। संसार में कला के कई रूप होते हैं। जैसे वास्तुकला, चित्रकला, संगीत कला, नृत्य, साहित्य इत्यादि। इनमें से प्रत्येक कला अपनी विशेषता और महत्व के लिए विख्यात है; किंतु इनमें संगीत एक ऐसी कला है, जो अन्य कलाओं से अद्वितीय है।

कला एक विचित्र परिचय देती है, जो मनुष्य के अंतरात्मा को स्पर्श करती है। संगीत इस सामर्थ्य की प्राचीनतम और अद्वितीय कला है, जिसका वर्णन करना आसान नहीं है। इसे केवल शब्दों में समझने का प्रयास करना एक सीमितता होगी। संगीत एक आध्यात्मिक और भावनात्मक अनुभव है जिसे केवल अनुभव ही किया जा सकता है।

संगीत अद्वितीय इसलिए है कि यही वो कला है, जो मन, आत्मा और संवेदना के संपूर्ण भावों को व्यक्त करने में सक्षम है। यह मन को स्पष्ट करता है, आत्मा को संतुलित करता है और जीवन को सुंदर बनाता है।

कला के विविध स्तरों और रूपों में से एक संगीत- एक ऐसी कला है जो आधुनिक मानव सभ्यता के मूल्यों को बखूबी से प्रतिष्ठित करती है। यह एक ऐसी कला है जो हमें गहरी अनुभूति में ले जाती है।

इस लेख में हम जानेंगे कि संगीत क्यों सबसे महान कला है और क्या कारण है, जो इसे विशेष बनाते हैं। यहाँ हम देखेंगे कि यह अपनी अद्वितीय महानता के साथ हमारे जीवन में कैसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं?

संगीत की खोज, अनुभव और उसका अध्ययन हमें एक समृद्ध और सामर्थिक जीवन की ओर आग्रह करता है। संगीत हमारी भावनाओं, विचारों और रूहानीता को छूने का एक अद्वितीय माध्यम है, जो हमें खुशी, उत्साह, शांति और आत्मा की गहराइयों तक पहुंचने की क्षमता प्रदान करता है। यही वो कला है जो मन, दिल और आत्मा को छूने की क्षमता रखती है।

संगीत के महानत्व को प्रारंभ करने से पहले हमें इसके मूल संगठन को समझना चाहिए। संगीत एक विचारशीलता, एकाग्रता और उच्चतम संवेदनशीलता का अद्भुत मिश्रण है।

प्राचीनतम साहित्य और ऐतिहासिक ग्रंथों में संगीत की महानता और महत्व का प्रमाण मिलता है। सर्वप्रथम तो वेद ही इसका ऐतिहासिक प्रमाण है। ऋग्वेद में संगीत की प्रशंसा की गई है और संपूर्ण सामवेद

* **उच्चतर माध्यमिक शिक्षिका, एम० पी० टी० +2 उच्च विद्यालय, झंझारपुर, मधुबनी (बिहार)**

संगीत ही है। इसे देवताओं अपाश्र्वकता अभिव्यक्ति माना गया है। कोई भी युग संगीत से वंचित नहीं है। जब से इस सृष्टि का जन्म हुआ संगीत अपनी महत्ता के साथ है। किसी भी काल में यह जीवन संगीत के साथ-साथ है। संगीत की महानता उसके प्रभावशाली गुणों में से एक भी नहीं छुटती है।

इसका प्रमुख लाभ यह है कि यह हमारे मन को सुख, शांति और समत्व की अवस्था में ले जाता है। संगीत का एक स्वरूप ध्यान ब्रह्मचारी वेदों में से स्वरूपानुश्वारी शांति की स्थापना करता है। संगीत एक मनोयोग है जो हमें शांति की अनुभूति दिलाते हुए हमारे चित्त को अस्पष्टता, उदासीनता और चिंताओं से मुक्त करता है और हमारे मन को शांत और प्रशांत बनता है।

संगीतिक ध्वनि एक ऐसी मनोहरी कला है, जो जीवन के हर पहलू को छूने की शक्ति रखती है। उसकी महानता को समझने के लिए हमें इनके अविस्मरणीय लाभों को समझना चाहिए। संगीत अपनी ध्वनि के माध्यम से व्यक्ति की शारीरिक-मानसिक अवस्था की वृद्धि करता है और अवस्था सद्गति को सुनिश्चित करता है। यह हमारे मन को संतुलित करता है, तनाव कम करता है और मनोवैज्ञानिक औषधि का जगह प्राप्त करता है। संगीत चिकित्सा और अवस्था सद्गति का महान साधन है, जो हमारे शरीर, मन और आत्मा को स्वस्थ और पूर्णतः सुखी बनाता है। संगीत को मनोवैज्ञानिक रूप से प्रमाणित किया गया है कि यह मानसिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव डालता है और मानसिक संतुलन सुधारता है।

संगीत की महानता का एक और महत्वपूर्ण पहलू है, उसका रोमांचक गुण। संगीत रोमांचक और उत्कृष्ट भावनाओं को जीवंत करने का एक साधन है। इसकी क्षमता हमें उच्च और अच्छी भावनाओं को व्यक्त करने की क्षमता प्रदान करती है। संगीत एक ऐसी कला है, जिसमें भावनाएँ, विचार और आत्मा आपस में मिल जाते हैं और नई प्रशंसा की ऊंचाई तक पहुंचते हैं।

संगीत की महानता का एक पहलू है उसका एकजुटता करने वाला प्रभाव। यह एक ऐसी भाषा है, जो भाषा, संस्कृति, जाति और धर्म की सीमाओं को पार करती है। संगीत सभी मानवीय जातियों और संस्कृतियों को एकता की अनुभूति दिलाता है। संगीत के माध्यम से हम सभी भाषाओं की सीमाओं को छोड़कर एक-दूसरे के साथ संवाद कर सकते हैं। इस प्रकार यह विभिन्न संस्कृतियों की समृद्धता और एकता का प्रतीक है।

संगीत वास्तव में मनुष्य की मानवीयता को प्रदर्शित करने का एक साधन है। यह हमें संतुलन, सुख, रोमांच और एकता की अनुभूति दिलाता है। इसकी महानता इसमें मौजूद ध्वनि, लय, राग, ताल और भावनाओं की संगठनशीलता में छिपी हुई है। हमें सुंदरता, सुख और समृद्धि का अनुभव कराने का यह एक अद्वितीय माध्यम है। यह हमें विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों और धर्मों के बीच एकता की अनुभूति कराते हुए जीवन को सुंदर प्रभावशाली और संतृप्त बनाती है।

संगीत मानव समाज के लिए एक शक्तिपुंज का काम करती है। यह बाहरी परिस्थितियों को पार कर हमें आत्मनिर्भरता और सामर्थ्य की भावना प्रदान करता है। संगीत में निहित भावनाएँ, विचार और विचारधारा

हमें एक साथ जोड़ती है और हमारी मानसिकता, उदारता और संवेदनशीलता को विकसित करती है। इसके माध्यम से हम अपने आप को एक आदर्श मनुष्य के रूप में विकसित करते हैं और समाज के लिए सहायता करते हैं।

संगीत मानव की महानतम कला है, जो हमें समझती है कि हम एक हृदय और एक मन के साथ एक ही संगीत के तहत जुड़े हुए हैं। इसे समझना और समर्पित होना हमारी दायित्वपूर्णता है। संगीत वास्तविक रूप से हमारे अस्तित्व का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो हमारे जीवन को सजीवता, उत्साह और आनंद के साथ भर देता है। संगीत की अद्वितीयता और सामर्थ्य उसे सर्वोच्च कला बनाते हैं, और हमें इसका महत्व समझने और सराहने के लिए प्रेरित करते हैं।

प्राचीनकाल से ही संगीत मानवीय जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाता रहा है। इसकी आधिकारिक तरीके से कहीं ना कहीं प्राथमिकता मिलती रही है, चाहे वह किसी साम्राज्यिक आचार्य या राष्ट्रगान के रूप में है। यह प्राणी को सामूहिक रूप से जोड़कर लोगों को एक साथ लाता है और सामान्य भावनाओं का आदान-प्रदान करता है। जो भावनायें हमें शब्दों, तस्वीरों इत्यादि के द्वारा प्रकट करने में कठिनाई होती है। वही हम संगीत के माध्यम से व्यक्त कर देते हैं।

प्राचीनकाल से आजतक मानव इतिहास में संगीत धार्मिक और अराधनात्मक कार्यों का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। यह अपनी स्वर-लय रूपी ध्वनि और भावनाओं के माध्यम से लोगों को अनेक ईश्वर और देवी अनुभवों के करीब ले जाता है। संगीत का प्रभाव मानव जीवन पर व्यापक है। यह न केवल भक्ति व मनोरंजन का साधन है बल्कि इससे लोगों को शक्तिशाली और सक्रिय बनाने का भी एक अद्वितीय तरीका है।

संगीत का एक महत्व ध्यान देने योग्य है। विज्ञान के अनुसार संगीत का सुनना शरीर में स्थित होने वाला हार्मोन गतिविधियों को बदलकर संतुलित करता है और ऐसा करके हमारे मन को शांति प्रदान करता है। संगीत मन को संगठित करता है, विचारों को प्रभावित करता है और हमारे विचारों, भावनाओं को शुद्ध करता है। संगीत का सुनना, बनाना, संघटित सोचने, ध्यान केंद्रित करने और रचनात्मकता की क्षमता को विकसित करता है।

संगीत की विविधता भी इसे एक महान कला बनाती है। इसमें अनेक प्रकार के संगीत उनका ढंग, गाने का अंदाज, स्वर और ताल का एक अद्वितीय संगठन होता है। संगीत के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी विशेषता और पहचान होती है जैसे-शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत, लोक संगीत इत्यादि। इसमें भाषा, संस्कृति, जाति और धर्म की एकता की भावना उत्पन्न होती है।

संगीत को कई क्षेत्रों में उपयोग किया जाता है जैसे- फिल्म, नाटक, नृत्य, प्रदर्शन, आर्ट, धार्मिक कार्यक्रम, विज्ञान आदि। इससे हमारे जीवन में सजावट, रंग, उत्साह की भरमार होती है। संगीत विश्वव्यापी और सभी भाषाओं, धर्मों को संबोधित करती है।

संगीत के माध्यम से हम अपनी भावनाओं को तो व्यक्त करते ही हैं, अपने अंतर्द्वंद्विता को समझते हैं। यह हमें सामाजिक और राष्ट्रीय मुद्दों के बारे में सोचने का और उस पर चर्चा करने का एक माध्यम भी प्रदान करता है। इसके माध्यम से हम अपने भारतीय संस्कृति और गीतों को बनाए रख सकते हैं। यह हमारे अंदर स्वतंत्रता, समरसता और अखंडता की भावना को बढ़ाता है।

संगीत लोगों को एक साथ लाने और सामूहिकता को स्थापित करने का अद्वितीय माध्यम है। संगीत आपसी संबंधों को बढ़ावा देता है, भावनात्मक संप्रेषण करता है और बाद्य गायन की एकता के माध्यम से लोगों के बीच आपसी बातचीत को बढ़ावा देता है। संगीत के माध्यम से हम भाषाओं, संस्कृतियों और राष्ट्रों के साथ जुड़ सकते हैं जो हमारे समानांतर विकास और एकता को बढ़ावा देता है।

संगीत आदर्श साधना का हिस्सा है जो हमें अद्वितीय उच्चतम आदर्शों की ओर प्रेरित करता है। यह सामरिक व्यक्तित्व और जीवन के रोमांचक अंशों का अद्यतन करने में सहायता करता है। संगीत शैलियों, संगीतकारों और गायकों के माध्यम से सामरिकता की भावना को स्थापित करता है और समाज को संपूर्णता की ओर प्रेरित करता है।

संगीत में आनंदित करने वाली शक्ति अद्वितीय है, जो हमारी भावनाओं, आनंद, सुख और संतोष को प्रोत्साहित करती है। जिसका प्रभाव हमारे मन और शरीर पर पड़ता है। संगीत हमें उच्चतम रूप में पहुंचाने की क्षमता रखता है और हमें एक-दूसरे के साथ अनुभवों की गहराई और गहराई में ले जाता है। संगीत सबसे ऊंचा और श्रेष्ठ कला है, जो हमारे मन, शरीर और आत्मा को आध्यात्मिक, सामरिक और सामाजिक स्तर पर संपूर्ण करती है, इसकी शक्ति, व्यापकता और सामर्थ्यता संगीत को सबसे महत्वपूर्ण कला बनाती है। संगीत हमारे जीवन का आधार बनाता है और हमें एक ऊंची मानवीय दशा तक पहुंचाता है। इसलिए संगीत सर्वश्रेष्ठ कला है, जिसे हम संपूर्ण आदर्श बनाने के रूप में स्वीकार करते हैं।

शायद ही कोई इस बात से असंतुष्ट होगा कि संगीत मानव जीवन की सबसे महान कला है। संगीत का मानवीय प्रभाव व्यापक है इसलिए हम कह सकते हैं कि यह हमारे जीवन की सबसे सुंदर और महत्वपूर्ण कला है। हमारे दैनिक जीवन में हम संगीत का उपयोग करते हैं, चाहे वह गाने की शृंगारिकता और त्योहारों की स्मणीयता हो या चिंतन की गहराई हो। संगीत जीवन को सुंदर, पूर्णताओं से भरपूर और अर्थपूर्ण बनता है।

इस संदर्भ में मेरे पूज्य गुरु के संगीत साधना के फलस्वरूप उनके श्रीमुख से निकला हुआ यह अनुभव सत्य प्रतीत होता है-

जीवन को संगीत सजावे। सप्त शुर अमृत पिलावे।।

अंतर मन में ज्योति जगावे। शांति और शक्ति मिलावे।।

मन की बाधा दूर हटावे। अपनी धुन में सदा बसावे।।

प्रभु चरण में प्रीत बढ़ावे। आदर और सम्मान दिलावे।।

आलस्य निंद्रा नहीं सतावे। भाव-भक्ति में मन को रमावे।।

सत्य अहिंसा व्रत उपजावे। प्राणी मात्रा में मित्रता आवे।।

बैर विग्रह से सदा बचावे। पराधीनता कभी ना लावे।।

शुभ मंगल आनंद बरसावे। स्वर और लय की भाव बहावे।।

स्वर, राग, लय, ताल छंद में जो मन को लगाय।

नाद, ब्रह्म का करें उपासना, सहज मुक्ति हो जाय।।

आखिर में हम यह कह सकते हैं कि संगीत मानवीय समाज के लिए एक महत्वपूर्ण और आवश्यक कला है। इसे सिर्फ शब्दों में नहीं बखान किया जा सकता है, बल्कि इसे महसूस किया जाना चाहिए।

अतः संगीत हमारी सबसे महान कला है, जो हमें जीवन के हर पहलू में ले जाने का अद्वितीय और आनंददायक माध्यम प्रदान करता है।

जय संगीत, जय संगीत।

संदर्भ :-

1. संगीत शोध पत्रिका, भैरवी, वर्ष-2012, अंक-6, पृ.122
2. भैरव अंक, जनवरी, 1955, पृ. 22, 23
3. जगदीष नारायण पाठक, संगीत षास्त्र प्रवीण, पृ. 9, 10
4. हरिश्चंद्र श्रीवास्तव, राग परिचय, भाग-1 प्रभाकर प्रष्नोत्तर, दशम संस्करण
5. इंटरनेट के द्वारा
6. पं. रामवृक्ष सिंह (अपने गुरु) के श्रीमुख से प्राप्त

CULTURAL CONSCIOUSNESS IN POLITICAL MOVEMENTS: A CASE STUDY OF MAGADH

Kirtima Singh*

anniekirtima@gmail.com

Introduction

The Land of Magadh has incredible contributions in the Indian Freedom Movement. Its history can be traced from many aspects. The contributions of grassroot level leaders can be traced throughout the historical trajectory of the freedom movement. They are almost hidden from mainstream historiography, but they played an unprecedented role in mass awakening, public participation and spread of message with patriotism at ground level.

The land of Magadh has produced innumerous intellectuals who have spreaded enlightenment through their defined boundary in their own way and their own regional languages. A series of events took place at the remotest corners as a resistance against colonial rule and contributed to national politics.

Local leaders were basically the executor of plans of towering leaders. They performed actions to make their goal successful. They played a very crucial role in conveying the message in local languages through Folktales, Folklores, Folksongs to the common mass with their traditional techniques.

Local leaders and their cultural and political consciousness contributed to decentralization of ideas, national unity and national awareness for independence. They are the unique identity of their region, symbol of glorious past and heritage and immensely contributed in cultural, social and political change at grassroot level which had remarkable impact in the political scenario of India. They played a very crucial role in cultivating pride, patriotism as well as nationalism among the common mass.

* **Research Fellow, P.G Department of History, Magadh University, Bodh Gaya**

The perspective to look down the stairs of history through the local aura needs to be presidented. Its reinterpretation, reconstruction and renovation should be marked as they are an untouched and unexplored portion of history.

Background

The contributions of history can be traced with many aspects. Although many of them are well known to us, some of them still awaited for proper attention. The contributions of greatest grassroot level leaders, common mass and regional culture can be traced throughout the historical trajectory. They are almost hidden from the mainstream history writing but they played an un-presidented role in mass awakening, public participation and spread of message with patriotism at grassroot level. They were not the plan makers, but the executors of plans which were organized by higher authority or the leaders and made their goal successful. They played a very crucial role in conveying messages during the Indian freedom struggle.

The fertile land of Magadh gave birth to such innumerous intellectuals who circulated messages of patriotism and spreaded enlightenment throughout their known defined boundary through traditional cultural techniques. The series of events took place at the remotest corners of Magadh. Although the causes behind them might be different from each other, their implications and impacts were almost same as well as common. Some of them provoked due to social interference, cultural resistance or the fear of customs, agricultural distress or strain of resources but all of them ultimately contributed in resistance against alien colonial rule and national politics and implied a sense of oneness and patriotism in common mass.

The contributions of such revolts and their leaders in the Indian national movement need proper space in the pages of history. Here is list of some leaders and their contributions from Magadh Cultural Zone-

Rajendra Singh –

Rajendra Babu belongs to Sevnan, Jehanabad. He was a great warrior. He sacrificed his life while fighting against British administrators with regional techniques and equipment at Piprahiya Sultan, Sitamarhi.[1]

Arjun Dwivedi –

Arjun Dwivedi belongs to Arwal. He played a prominent role in the organization of mass during the Quit India Movement. He was in contact with leaders such as Mahamaya Singh, Mohiya, Ramnaresh Singh through letters. He was appreciated by Gandhi ji for his work.

One of the prominent leader wrote to him as

"*Dwve ji ko malum ho! ki hamare shirsh netaon ko giraftaar kr lia gaya hai, aage ki ranniti ke lie sawan mas ki dwitiya ko sabhi mitron ke sath Patna aana hai*"[2]

with the letter some maps were attached to be followed to reach the meeting ground.

Buddhan Mahto -

Buddhan Mahto belongs to Rashidpur. He was a flag bearer of Gandhian thoughts and traveled to many places with Gandhi ji in order to organize Gandhi 's political junction. He played a very important role in organization of meetings throughout the journey of Gandhi ji so, his contributions impacted on the Indian curtain.

Shiv Bhajan Singh –

Shiv Bhajan Singh belongs to Babhna, Jehanabad. He led a group of people during the Quit India Movement and destroyed railway tracks and attacked a British administrator[3]. He was leading a rebellious kind of ideology and trained a group to fight with local equipment against Britishers and their modern technology.

Habib-ul-Rahman -

Habib-ul-Rahman belongs to Gaya. He played an unprecedented role in spreading a sense of pride and patriotism among the common mass. He played an incredible role in making the nation stronger to fight against colonial rule.

Vishnu Chit Sharma -

Vishnu Chit Sharma belongs to Belao village of Arwal. He belongs to the Brahmin community and was associated with a temple near Belao. He made this temple a ground to plan or spread a message of patriotism to the mass. He organized a group

of people and trained them in the local language and appointed them to provoke the mass against British authority through Folk Songs.[4]

Fateh Narayan Singh -

Fateh Narayan Singh belongs to Babhna. He played a remarkable role in forming groups and public participation in movements. He marked his signature remark in awakening of the common mass through several unique traditional techniques.

Taranath Mishra -

Taranath Mishra was popularly known as Bahrupiya Baba. He was blessed with the extraordinary skill of changing his personality. He was working as a Spy for Indian leaders and he was blessed to know many of the languages. His contribution is remarkable in the distribution of a local magazine which was unpublished.[5] He played remarkable role in circulation of the messages to the remotest corner of Magadh area.

Jai Narayan Singh -

Jai Narayan Singh belongs to Ainwan village of Jehanabad. He was awarded with punishment of imprisonment and stayed in jail for 11 years. He propounded the principle and philosophy of Gandhiji but in letter part of his life he was sentenced to death by the British government but due to involvement of Rajendra Prasad he came out of the prison.[6]

Uday Narayan Singh-

Uday Narayan Singh and Prabhu Singh played a very important role in the dislocation of railway tracks. As they were strong supporters and propounders of traditional ethics, they opposed modern ideas and religious customs imposed by colonial authorities.

Lakhan Singh-

Lakhan Singh took help of cultural traits and with the help of folklores and folktales.[7] He started awakening the common mass and introduced bad aspect of British government to common mass. He played a very remarkable role in spreading the essence of nationalism and patriotism to the common mass.

Jangi Singh –

Jangi Singh belongs to Niyamatpur, Bela, Gaya. He was having a rebellious attitude towards the alien authority. In 1942 he organized a group of people and planned to attack on Railways and planned to hit Chakand Railway track and destroy it.

Ways Followed –

Political awareness through Folk Songs in folk language -

"*bhaiya kishanva ho na raha to ghar parivar,*

'utha utha kamran ke bandha, Shastra saan dharo ree'

"Dhar ke ham lakhon hee bhes,

kiya chaupat yah sara desh"

" chana churan je Hakim khai thaat

upar Duna tickas lagai thath

Sara Hind hajam kar jaithath"

"Chana haqim sab jo khate,

sab par duna tikas lgate"[8]

Through these kinds of cultural folk songs grassroot level leaders tried to provoke the essence of patriotism and nationalism among the common masses.

Chaupals- Batkahi -

Chaupals and Batkahi played an incredible role in sharing ideas and messages of patriotism and public participation.

Dr. Ram Prasad Singh writes

"*Magadh me Aksar log Sham mein ek sath baithkar pauranik kathaon se lekar samkalin sandrbh per charcha karte the"*[9]

Mandali-

Mandali was a group of people who coordinated themselves in a group and moved here and there in the remotest corners with musical instruments to give pace to the acceleration of national patriotic ideas.

Dr. Satyendra writes

"*Entertainment was not only the reason behind folk tales or folk lores but they also enhance overall development of society, encourage nationalism and renovate the glorious past"*

Religious Leaders or Local Heroes -

Magadh is a land of many extraordinary people whose work and contributions have strongly influenced the course of events of history. Being a hero or leader is not an easy thing but there are more heroes out there than one might think. People who are heroes do not always get recognized. Some of them don't even think of themselves as heroes. True heroes are more than action figures, they are ordinary people who are brave, calm, and kind.

The Local Heroes is an attempt to recall and remember forgotten heroes of our freedom struggle, many of whom might be renowned yet unknown to the new generation and hidden in historiographical essence. Their ethos and principles ought to be recalled and respected.

"*Pratyek kahani kisi uddeshya vishesh se, kisi vishesh aayu varg ke lie khadi hoti hai"*[10]

Religious Places-

Religious places became the center point of policy making, education, social ethics, and most importantly it played a role as economic treasury for the freedom movement.[11] At religious places leaders used to perform get together ceremonies and discuss future plans and perform analysis of earliest performed plans. Religious places became a medium of inspiration and encouragement to the common mass as they started fighting against immediate causes with images of their glorious past and its revival inside their mind as well as heart.

Sitaram Jha Shyam writes *'rang manch aims to create awareness in Nations life'*

Paintings and Posters -

Paintings and Posters were the permanent dimensions in the mind of people's consciousness. It was a way to convey a message to the crowd though pictorial implications. The group of people who cannot read can assume and extract the real meaning of messenger through these kinds of actions. It was more people friendly at that point of time as most of the common mass was not able to read or write so it was a convenient way to establish communication with them.

Local Newspapers, Pamphlets and Letters -

Magadh is a land of many extraordinary people whose work and contributions have strongly influenced the course of events of the history.[12] Nationalist, writers, poets, artists, musicians, theater artists, all have their fair share of contribution to

the land in the resistance of people against British colonial rule. They immensely contributed in cultivating pride, patriotism as well as nationalism among the common mass through folk tales[13], folklores in folk languages. These local documents became the communication node for the common mass.

Conclusion

The incredible folk culture had contributed through remarkable and unique ways for national consciousness most of all by enriching the heart, mind and souls of the common mass. All these contributed to national unity and national patriotism. They are the unique identity of their particular region, symbol of glorious past and heritage. They help the modern generation in cultivating a sense of pride and patriotism.

This perspective of looking down on history highly needs reinterpretation, reconstruction and renovation as they are an untouched and unexplored portion of history. They extremely need protection, promotion and preservation at rural or local level in particular and at national level in general. They reflected folk ideas on a national base and played a crucial role in decentralization of ideas and spiritual, cultural, social as well as political change at grassroot level which had a remarkable impact on the political, cultural as well as social scenario of India and Indian national movement.

References:

1. Interviewed, Ishendra. Village Sevnan on July 20, 2023 at Jehanabad

2. Letter, Handwritten to Dwve Ji, dated-Asadh, Ekadashi, 1942

3. Interviewed: Anzash, Arvind on July 22, 2023 at Babhna, Jehanabad

4. Interviewed: Rangnath on July 26, 2023 at Arwal

5. Handwritten Memoir dated January 25, 1994

6. Interviewed: Singh, Kallu B/O Jai Narayan Singh on July 27, 2023 at Shyam Nagar, Jehanabad

7. Interviewed: Pandit, Krishna on July 28, 2023 at Tehta, Jehanabad

8. Shyam, Sitaram Jha. (2012). Natak Aur Rangmanch, Patna: Bihar Rashtrabhasha Parishad. p. 238

9. Singh, Ram Prasad. (1996). *Magadh ki Lokkathayen*. Gaya: Magahi Academy.

10. Satyendra. (1971). *Lok Sahitya Vigyan*. Agara: Shivalal Agraval & Company. p. 277

11. Singh, Baiju. (2016). *Dharohar*. Gaya.

12. Suman, Satyendra Kumar. *Lok Sahitya ki Bhumika.* Patna

13. Verma, Nalin. (2019). *The Greatest Folk Tales of Bihar*. New Delhi: Rupa Publications India.

चंद्रकिशोर किशोर जायसवाल का उपन्यास 'दाह': एक समीक्षात्मक अध्ययन

पवन कुमार ठाकुर[*]
pksunrise.eflu@gmail.com

डॉ. निवेदिता कुमारी[†]
nivedita.jmdpl@gmail.com

सारांश :

'दाह' उपन्यास आँचलिक जीवन पर आधारित है। यह उपन्यास की कथा गोपाल साह के परिवार के चारों ओर घूमती है। गोपाल साह एक भरा-पूरा परिवार था। इनके चार बेटे थे। पिता सहित चारों बेटे और बहू किसी न किसी कारण से इस मृत्यु लोक से सदा के लिए चल बसे। अब साह जी के परिवार में एक बूढ़ी दादी (गोपाल साह की पत्नी) और उनके नौ पोते सहित उनकी पत्नी और बच्चे हैं। सभी का अपना-अपना परिवार है। गोपाल साह के सभी पोतों में बालो आर्थिक रूप से बहुत लाचार हैं। वे किसी तरह अपना जीवन गुजार रहे थे। लेकिन सभी पोतों दादी का सारा भार बालो पर ही थोप दिया है और बालो कई सारी परिस्थितियों का सामना करते हुए दादी का अंतिम संस्कार तक के सारा भार उठाया। दादी तो सबकी थी, सभी पोतो का दायित्व होता है दादी का भार उठाने का लेकिन समाज में कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जो कमजोर को और कमजोर बना देता है। जायसवाल जी इन समस्याओं को दुनिया के सामने रखते हैं।

बीज शब्द : दाह, आंचलिक, यथार्थ, विमर्श, पिछड़ा, मृत्यु, कर्तव्यबोध, अंधविश्वास, मार्मिकता, मूल्य।

इस उपन्यास में कथा के अनुकूल आँचलिक पात्र भी देखने को मिलते हैं। जो निम्नलिखित हैं- गोपाल साह उनकी पत्नी (बुढ़िया), गोपाल साह के चार बेटे गजानन, सरजुग, गौरव, संतलाल और इन चार बेटे के नौ बेटे। यानी गोपाल साह के नौ पोते और उनकी पत्नियाँ। बड़ा पोता शंकर और उनकी पत्नी पकोलीवाली, रामफल और उनकी पत्नी मुरादपुरवाली, जयनारायण और उनकी पत्नी पिपरावाली, प्रहलाद और उनकी पत्नी चन्दौलीवाली, राजकुमार, बलदेव और उनकी पत्नी चिकनावाली, जयकुमार, मोहन, अनिल, साजो, चंद्रकला, गन्हेरी भगत, पुरन्दर साह, लाल बाबा, पंडित त्रिनाथ मिश्र, बिरंची बाबू और बालो,

[*] **शोधार्थी, हिंदी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा**

[†] **शोध-निर्देशिका, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, जे.एम.डी.पी.एल महिला कॉलेज, मधुबनी**

जो इस उपन्यास का नायक हैं। शुरू से ही कई परिस्थितियों से जूझते हुई दादी की अंतिम संस्कार तक का भार झेलते हैं। आदि पत्रों को लेकर उपन्यास का ताना-बाना बुना गया है।

कहा जाता है कि भारत गाँव का देश है। लेकिन गाँव अभी भी शहर के मुताबिक बहुत पिछड़ा हुआ है। उसमें आँचलिक क्षेत्र का हालत तो और भी खराब है। यहाँ सड़क, बिजली, पानी, अस्पताल, शिक्षा आदि कई सारी समस्याएँ अभी भी हैं और वहाँ के लोग उन समस्यों से जूझ रहे हैं। साथ ही पारिवारिक माहौल भी शहर के तुलना में ग्रामीण जीवन का अलग होता है।

वृद्धावस्था में व्यक्ति को कई सारे समस्याओं को सामना करना परता है। क्योंकि पहले जैसा शरीर नहीं रह जाता है, ढलती उम्र के साथ-साथ स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता जिसके कारण कई सारी परेशानी बढ़ जाती है। उस समय उनको एक सहारे की आवश्यकता है। यदि सहारा नहीं मिलता तो मन बहुत व्याकुल हो जाता है। उनसे बात करने के लिए भी कोई नहीं रहता। उसे समय पर एक ग्लास पानी तक नहीं मिलता है। वही हालात गोपाल साह के बुढ़िया की है। उनके पास अब बातें करने के लिए भी कोई नहीं आता है। जायसवाल जी कहते हैं "सात-सात पोतों के रहते हुए भी बुढ़िया के लिए घर सूना हो चुका था। घर की औरतें को तो बुढ़िया फूटी आँखों नहीं भाती थी। बिलकुल बलाय की तरह रह रही थी बुढ़िया और अपनी ही घर में। कोई पास तक नहीं फटकता था"[1] जो बुढ़िया अपने समय में पूरे परिवार को चलती थी लेकिन आज यह नौवत आ गयी कि उसी परिवार में उनसे सब दूर होना चाहते हैं कोई अपने पास नहीं रखना चाहते हैं।

कहा जाता है कि बच्चे भगवान के रूप होते हैं उसमें छल-कपट नहीं होता। जब बच्चा दादी के पास जाती है तो उसकी माँ "बेटी को हाँक लगाकर बुलायी और कमरे के अंदर ले जाकर गाल पर एक तमाचा जड़ते हुए बोली…अगर फिर देख लिया तो टाँग तोड़ कर रख दूँगी"[2] इस तरह के सोच वाली औरतें अभी भी समाज में हैं।

हमारे समाज में बहुत सारे ऐसे भी व्यक्ति हैं जो वे अपने सही जिम्मेदारी से पीछे हटते रहते हैं। जब माता-पिता, दादा-दादी बुजुर्ग हो जाते हैं तो उसे एक सहारा की जरूरत होती है। जिसके बल पर आगे की जिंदगी गुजार सके। लेकिन वे सब अपना कर्तव्य करने के लिए तैयार नहीं होता। उनसे दूर रहना चाहता है। जब बुजुर्ग काम लाईक नहीं रह जाते तो अधिकतर संतानें मन ही मन सोचते रहते हैं कि कब वे यहाँ से चले जाए। जायसवाल जी लिखते हैं "काकी अब और मत रुको, काकी" इसीलिए की उनको देखभाल नहीं करना पड़े। यहाँ तो गोपाल साह के मरने के बाद उनके चारों बेटे और उनकी पत्नियों भी मर चुंकि है और गोपाल साह की पत्नी (बुढ़िया) अब पोते की सहारे हैं। बुढ़िया के सामने उनके चारों बेटों और उनकी पत्नी धीरे-धीरे इस दुनिया से गुजरने लगे तो गाँव के लोगों ने बुढ़िया को बहुत चिरहाना प्रारंभ कर दिया। "बुढ़िया दादी को बहुत पहले मर जाना था…. गे बूढ़ी तुम्हारे बेटों के मरने की बारी आ गयी। तू क्यों उनकी मौत देखने बैठी हुई है।"[3] आदि मन पर चोट पहुंचाने वाली बातों से बुढ़िया को सामना करना पर रहा था। जब बुढ़िया का अपना जामाना था तो वे अपने परिवार में प्रधानमंत्री की तरह शासन चलती थी। कोई उनके सामने बोलने वाला नहीं था। जब बुढ़िया

को समाज के लोग कहते कि बेटा सब मरते जा रहा है तुम…। उस समय बुढ़िया को पैरुख थी, झट जबाब देती थी, बेटा अपनी करनी से मारा, मैं क्यों मरूं? जब गोपाल साह के चारों बेटे धीरे-धीरे इस संसार से चल बसे तो बुढ़िया पोतों पर आश्रित हो गई।

इस समाज में बहू अपनी सास की सेवा करने के लिए तैयार नहीं होती है। लेकिन यहाँ तो सास के सास (ददिया सास) हैं उनकी सेवा कौन करेगी? जायसवाल जी लिखते हैं "अपनी सास रहती तो बात और थी; अब दादिया सास का गूह-मूत तो मुझसे नहीं किया जाएगा"[4] आज हम देखते है ऐसे-ऐसे बहुत सारी बुढ़िया है। जिन्हें इन परिस्थितियों से सामना करना पर रहा है और परिवार के सदस्य उन्हें घृणा के भाव से देखते हैं। लेकिन ऐसा नहीं होनी चाहिए।

गोपाल साह के सभी पोतों बुढ़िया को अपने पास रखने के डर से अपनी-अपनी समस्या बताकर पीछे हट गये। ताकि यह बुढ़िया हमसे दूर रहे। किसी दूसरे भाई के पास चली जाए। नौ भाइयों में जब बुढ़िया को कोई अपने पास रखने के लिए तैयार नहीं हुआ तो सभी भाइयों ने विचार किया कि एक-एक महीने का पारी लगा ले। लेकिन पारी लगाने के बाबयुद भी सभी भाइयों ने अपनी बुद्धि का सहारा लेकर, कई सारे बहाना बनाकर फिर से पीछे हट गया। कोई बोलते मेरे पास ये समस्या है, कोई बोलते मेरे पास वो समस्या है और पीछे हट जाते । बुढ़िया के हिस्से में ज्यादा रकम भी नहीं था। सिर्फ खाने-पीने के लिए तेरह शेर अनाज, उसी में दवा दारू भी है।

परिवार में सभी सदस्यों की सोच एक जैसा नहीं होता। सभी सदस्यों का सोच अलग-अलग होते हैं। वैसे ही गोपाल साह परिवार में बालो थे। जब सभी भाइयों दादी को देख-भाल करने से पीछे हट गये, लेकिन बालो नहीं हटे, वे डेट रहे। बालो आर्थिक स्थिति से कमजोर था। लेकिन उसके पास बहुत बड़ा दिल था, वहीं व्यक्ति दादी का सहारा हुआ। गोपाल साह के परिवार में बालो और उनकी पत्नी चिकनावाली। वे भी की शांत स्वभाव थी। अपने संघर्ष के बल पर कई सारी समस्याओं का समाना करते हुए अपना जीवन-यापन करते थे। उन्हें दिन खाते तो रात के लिए सोचना परता। वे सभी भइयों में सबसे मुँहदुबर थे। जायसवाल जी कहते हैं "मुझे नहीं मालूम था कि बालो को दादी से इतना लगाव था। दादी के मरने पर इतना दुखी तो मैंने आज तक किसी को देखा ही नहीं है।"[5]

सभी भाइयों ने दादी को बालो के हिस्से में रख दिया। बालो को अपने परिवार और दादी को भी सारा खर्च उठाना परता था। बालो की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। ऐसी स्थिति थी कि दिन की कमाई से शाम में भोजन होता था। इस बीच में यदि कोई दूसरा भाई रखने के लिए भी सोचता तो उसकी पत्नी घर में हल्ला मचा देती थी। गाँव में किस प्रकार भाई-भाई में लड़ाई होती है। दियादनी-दियादनी में लड़ाई होती है आदि चित्रण जायसवाल जी, हु-बहु प्रस्तुत करते हैं।

बालो उस समय भी बहुत खराब स्थिति से गुजर रहा था। उसी समय वे एक पंडित के चक्कर में फंस गया। पंडित धन प्राप्ति का लोभ दिया। चंद्रकिशोर जायसवाल लिखते हैं "इस यंत्र का सात दिनों तक पूजन

करना और प्रतिदिन दुर्गा सप्तशती का पाठ भी। अंतिम दिन एक सौ आठ आहुतियाँ देकर कन्याओं को भोजन कराना। और तब इस यंत्र को गले में धारण कर लेना। फिर देखना, मांगनमल सेठ वशीभूत होकर बिना माँगे ही तुम्हें धन देगा"[6] लेकिन बालो को धन-प्राप्ति नहीं हो जा तो पंडित हर-एक बार बालो में ही कमियां निकालता और आगे सही से करने के लिए बोलता है।

जब बुढ़िया को मरने की बारी आती है तो सभी भाइयों पहले ही घर से निकल जाने का सोच रखा था। ताकि ना घर पर रहेंगे ना मुझे दादी का श्राद्ध का खर्च देना पड़ेगा। एक दिन दादी मर गई।

सभी भाइयों में शंकर सबसे बड़ा था। परंपरा के अनुसार आग देने का हक बड़े भाई को जाता है। लेकिन शंकर तो पहले से बहाना बनाकर रखा था। दादी मरी हुई थी लेकिन वह कई सारे उदाहरण देकर बहाना बनाकर आग देने से पीछे हट गया। इस प्रकार सभी भाई धीरे-धीरे बहाना मार कर पीछे हट गया। अब तो बालो के ही सर पर सब भार पर गया। बालो ने सभी भाइयों से आग्रह किया, आप सब मेरी स्थिति तो देख ही रहे हैं जो मैं काम करके आता हूँ उसके बाद ही मेरे बाल बच्चे भोजन करते हैं। बालो एक पड़ोसी के माध्यम से यह बात शंकर भैया को पहुँचा दिया। सभी भाईयों ने विचार किया ठीक है दस दिनों का खर्च हम सब उठा लेंगे बालो उसके बाद आग देने के लिए तैयार हो गया। सभी भाईयों ने इस बार बालो को फिर से फंसा दिया। दाह-संस्कार की सभी सामग्री उधार ही ले आया। जब सभी समान उधार लेकर काम कर लिया, उसके बाद उधारी का पैसा चुकाने के लिए सभी लोगों ने बालो से ही कहा। क्योंकि वह आग दिया था। सभी भाइयों का विचार जो आग दिया वहीं पैसा दे मैं क्यों दूँ। बालो बहुत मुसीबत में पड़ जाता है। सभी भाई अपनी-अपनी जिम्मेदारी से पीछे हट जाता है। और सारा खर्च बालो को ही उठाना परता है। इस पारिवारिक समस्या को जायसवाल जी बहुत ही मार्मिक तरीके से दुनिया के सामने रखते हैं। यहाँ रिस्तों के प्रति साकांक्षता समाप्त होती दिखाई पड़ती। साथ ही मानवीय मूल्यों ह्रास दिखने है। आधुनिक समाज में संयुक्त परिवार की टूटती छवियाँ दृष्टिगोचर होने लगी। उपन्यासकार ने इस समाज में मूल्य विघटन की स्थिति को बड़ी ही मार्मिकता एवं संवेदन दीनता के साथ प्रस्तुत किया है।

जायसवाल जी इस उपन्यास में आँचलिक शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे- ओसारे, दादिया सास, पल्ला साड़ी, नैहर, छिपली, गोयठों, रे मुन्ना, रे बिंदा, दालान, गोतिया-दियाद, परोसी, करमजलियों, बुढ़िया, थरथर करती थी, टोना-टोटमा, हगलगण्डी आदि आदि।

इस उपन्यास में किस्सा का भी प्रयोग किया गया है जैसे- पिपरावाली एक हिस्सा सुनने लग जाती है, "एक बार बिरौली में से कुछ लोग पिपरा में लालधारी चाचा के यहाँ उनकी लड़की को देखने आए थे। उनमें एक सूरदास था। राजनाथ चाचा ने उनसे पूछा भगत जी आपको तो कुछ लौकता नहीं है; आप लड़की कैसे देखेंगे? सूरदास ने जवाब दिया, मैं तो नहीं आ रहा था, मगर लोगों ने वहाँ कहा कि साथ में किसी बूढ़े-बुजुर्ग को भी रहना चाहिये। हाँ, लौकता तो नहीं है, मगर नाक-नक्शा की जानकारी मिलने पर मैं भी लड़की के बारे में अपना कुछ निर्णय दे सकता हूँ।"[7]

इस उपन्यास में ग्रामीण पात्रों भी देखने को मिलता है जैसे- पकोलीवाली, कलेसरी दादी, भगत जी, राजनाथ चाचा, महथीवाली, मुनिया, सत्तो साह, चंदौलीवाली, भैरवा, रे संजय, अमला दीदी, निंदा, कलेसरी दीदी, बोकनी चाची, सरैयावाली भौजी, बैजा, कमलू आदि। कैरेक्टर के अनुसार पात्र भी देखने भी देखने को मिलता है। जिस पात्र का जैसे कैरेक्टर वैसे ही पात्र के द्वारा अपनी बात जायसवाल जी कहलवाने का प्रयास किया है। जैसे लगता है कि सही में नई दिशा देने का प्रयास करते हैं।

इस उपन्यास में कहावत, लोकोक्ति भी देखने को मिलता है जैसे- 'बाहर से फिटफाट अंदर से मोकामा घाट', 'घर-घर देखा एकहि लेखा', 'चोर-बुद्धि तो राज-बुद्धि को हमेशा मात देती रही है', 'आँधी में बगुले का ठिकाना', 'सात दांत उदंत को, रंग जो काला होय। इनको कबहु न लीजिये, दाम चहे जो होय।', 'छोटे सींग औ छोटी पूंछ। ऐसा बरदा लो बेपूछ', 'हाथी के साथ गन्ना चूसने में होशियारी नहीं है' 'गर मुर्दा उखाड़ने से अब कुछ नहीं होगा'आदि।

जायसवाल जी अपने उपन्यास में अंधविश्वास का भी चित्रण करते हुए लिखते हैं- "भगवान राम की खोज में जाते हुए लक्ष्मण जो रेखा सीता के आगे खींचकर गये थे वही रेखा एक अघोरी को बुलवाकर घर के सारे लोगों के सामने मंत्र पड़वाकर उसेने अपने घर और पिछवाड़े के चारों ओर खिंचवा डाली ऊँ दशांगुलि भीन्दलि विरुडुहारिभैरुण्ड भैरवी विद्यारापी रोलाबंध, मुष्टिकबंध, बाणबंध, कृत्यबन्ध, रुद्रबन्ध, नेकबन्ध, ग्रहबन्ध, प्रेतबन्ध, भूतबन्ध, यक्षबन्ध, कंकालबन्ध, वेतालबन्ध, आकाशबन्ध, पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण सर्व दिशाबन्ध..."[8], "मगर मुझे तो लगता है कि भादों में भी सोमवारी ही करती रह गयी यह, इस बार भी बेटी ही होगी, बेटियाँ होंगी जुड़वाँ।"[9], "अब भूमि-दान की दक्षिणा?, इसकी भी दक्षणा, बिना दक्षिणा दान कैसा? दक्षिण में यहाँ भी सोना?, सिर्फ सोना के दान में चाँदी की दक्षिणा।....अब दक्षिणा भी दे ही डालिये। दिया हुआ दान लौटया भी तो नहीं जा सकता। भूमिदाता स्वर्ग में साठ हजार बरसों तक आनंद ग्रहण करता है और जो दान लौटा लेता है वह उतने ही बरसों तक नरक में वास करता है।"[10] ऐसे-ऐसे कई सारे अंधविश्वास समाज में फैला हुआ है जिसके वजह से समाज के लोगों शोषित भी हो रहे हैं। इन समस्यों से कैसे छुटकारा मिले, एक निर्मल समाज का कल्पना जायसवाल जी करते हैं। और अपनी बात दुनिया के सामने रखते हैं।

यह समस्या सिर्फ गोपाल साह के परिवार के सदस्यों का नहीं है मुझे लगता है यह समस्या उन सारे परिवार का है जिस परिवार में वृद्ध व्यक्ति हो उसमें भी सास का सास हो।

चन्द्रकिशोर जायसवाल जी आम लोक कथाकार हैं। वे लोक जीवन से जुड़ी आँचलिक समस्यों को अपने कथा का केंद्र बिंदु बनाकर इस उपन्यास में आँचलिक जीवन के अनेक समस्याओं को दुनिया के सामने रखते हैं। जैसे- अंधविश्वास, वृद्ध-विमर्श, गरीबी, असहायता, निरुपाय, कर्त्तव्यबोध का अभाव, लालच, स्वार्थ लोलुपता, ईर्ष्या, द्वेष, उसके साथ पारिवारिक कलह का चित्रण आदि। जायसवाल जी इस उपन्यास में ग्रामीण जीवन का बड़ा स्वाभाविक और सहज चित्रण उपस्थित किया है। समाज में उपजी इन विडंबनओं से कैसे मुक्त हो और एक स्वस्थ समाज की परिकल्पना ही लेखक का मूल उद्देश्य है।

संदर्भ:

[1] जायसवाल, चंद्रकिशोर. (2004). *दाह*. पूर्णिया-साहिबाबाद : प्रशासन- रचनाकार प्रकाशन. पृ. 11

[2] जायसवाल, चंद्रकिशोर. (2004). *दाह*. पूर्णिया-साहिबाबाद : प्रशासन- रचनाकार प्रकाशन. पृ. 12

[3] जायसवाल, चंद्रकिशोर. (2004). *दाह*. पूर्णिया-साहिबाबाद : प्रशासन- रचनाकार प्रकाशन. पृ. 7

[4] जायसवाल, चंद्रकिशोर. (2004). *दाह*. पूर्णिया-साहिबाबाद : प्रशासन- रचनाकार प्रकाशन. पृ. 23

[5] जायसवाल, चंद्रकिशोर. (2004). *दाह*. पूर्णिया-साहिबाबाद : प्रशासन- रचनाकार प्रकाशन. पृ. 124

[6] जायसवाल, चंद्रकिशोर. (2004). *दाह*. पूर्णिया-साहिबाबाद : प्रशासन- रचनाकार प्रकाशन. पृ. 71

[7] जायसवाल, चंद्रकिशोर. (2004). *दाह*. पूर्णिया-साहिबाबाद : प्रशासन- रचनाकार प्रकाशन. पृ. 29

[8] जायसवाल, चंद्रकिशोर. (2004). *दाह*. पूर्णिया-साहिबाबाद : प्रशासन- रचनाकार प्रकाशन. पृ. 44

[9] जायसवाल, चंद्रकिशोर. (2004). *दाह*. पूर्णिया-साहिबाबाद : प्रशासन- रचनाकार प्रकाशन. पृ. 45

[10] जायसवाल, चंद्रकिशोर. (2004). *दाह*. पूर्णिया-साहिबाबाद : प्रशासन- रचनाकार प्रकाशन. पृ. 102

असमिया भाषा में वाच्य-आधारित क्रियापदों की रूप-रचना

सुरभि चुतिया*

surabhichutiaind999@gmail.com

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से असमिया भाषा की वाक्य संरचना में 'वाच्य' संबंधी सभी विकार क्रियापदों में ही होते हैं उसे स्पष्ट किया गया है। असमिया भाषा में 'वाच्य' की संख्या तीन हैं- कर्तृवाच्य (active voice), कर्मवाच्य (passive voice) और भाववाच्य (intransitive voice)। उपर्युक्त तीन वाच्य के अलावा असमिया वाच्य में 'कर्म कर्तृवाच्य' का प्रयोग भी मिलता है। वाच्य के द्वारा इस बात का बोध होता है कि- वाक्य के अंतर्गत कर्ता, कर्म और भाव में से किस की प्रधानता है। वाक्य में क्रिया प्रधानतः कर्ता के विषय में, कर्म के विषय में और क्रिया स्वयं अपने विषय में कहते हैं। वाक्य में मौजूद क्रिया का संबन्ध जब कर्ता के साथ हो तो उसे 'कर्तृ' वाच्य कहते हैं, जैसे- प्रियाइ चाह खाइछे। (प्रिया ने चाय पीया।), कर्म के साथ संबन्ध हो तो 'कर्म' वाच्य कहते हैं, जैसे- मधुर द्वारा चाह खोवा हल। (मधु के द्वारा चाय पीया गया।), क्रिया अगर अपना भाव खुद व्यक्त करे तो उसे 'भाव' वाच्य कहते हैं, जैसे- कितापखन पढ़ा हल (किताब पढ़ी गई।), कोई काम अगर कर्ता कर्म दोनों के साथ हो तो उसे 'कर्म- कर्तृ' वाच्य कहते हैं, जैसे- गच कटा हैछे। (पेड़ कट रहा है।)। संस्कृत भाषा में यह चार वाच्य हैं, संस्कृत भाषा में जिस प्रकार 'कर्म कर्तृवाच्य' का प्रयोग होता है ठीक उसी प्रकार 'कर्म कर्तृवाच्य' का प्रयोग असमिया भाषा में भी मिलता है।

मुख्य शब्द- *वाच्य, क्रिया, क्रियापद, असमिया भाषा*

प्रस्तावना

भाषा संचार एवं जीवनयापन का एक सशक्त एवं उत्कृष्ट माध्यम है। 'असमिया' नव-भारतीय आर्य भाषाओं की विशिष्ट और उच्च स्तरीय भाषा है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ, जो भारत में बोली जाने वाली भाषाओं में से हैं पाली, प्राकृत और अपभ्रंश अवस्थाओं से होकर अपने रूप में उभरी हैं। जो भाषाएँ विभिन्न चरणों से गुजरकर अपना रूप प्राप्त कर चुकी हैं उनमें असमिया, बंगाली, उड़िया, नेपाली, पंजाबी, सिंधी, गुजराती, मराठी, राजस्थानी, कश्मीरी, हिंदी, मैथिली, उर्दू, सिंहली आदि शामिल हैं। भारतीय आर्य भाषाओं में से एक आधुनिक भाषा है जिन्हें अपनी रंगीन सभ्यता, संस्कृति और साहित्य पर गर्व है, वह भाषा है 'असमिया'। असमिया भारत के पूर्वी भाग में असम राज्य की आधिकारिक भाषा है। असमिया का उपयोग पूरे उत्तर पूर्व अर्थात पड़ोसी राज्यों अरुणाचल प्रदेश, मेघालय और नागालैंड की भाषाओं के साथ संयोगी

* **पीएच.डी. भाषा प्रौद्योगिकी, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा (महाराष्ट्र)**

(lingua franca) भाषा के रूप में प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए, नागामिज़, नेफ़ामिज़ आदि। भारतीय संविधान के आठवी अनुसूची के अंतर्गत 22 भाषाओं में असमिया भाषा अन्यतम है।

किसी भाषा की वाक्य संरचना में क्रिया पदबंधों का केंद्रीय स्थान होता है। क्रिया पदबंधों का एक महत्वपूर्ण स्थान है जिसके कारण वाक्य संरचना संभव है। किसी वाक्य में क्रिया के साथ जितने भी घटक जुड़कर आते हैं, वे क्रिया पदबंध का निर्माण करते हैं। क्रिया पदबंध के शीर्ष में क्रिया होती है एवं अन्य पद उसी पर आश्रित होते हैं। मुख्य क्रिया के चार भेद है- सरल क्रिया, मिश्र क्रिया, यौगिक क्रिया और संयुक्त क्रिया। जिसके द्वारा हमें शब्द के अर्थ अथवा कार्य-व्यापार का बोध होता है। सहायक क्रिया से कार्य व्यापार के काल, वचन, पक्ष, वृत्ति, वाच्य आदि से संबंधित व्याकरणिक सूचना का बोध होता है। प्रस्तुत शोध पत्र में असमिया भाषा के सहायक क्रिया के कार्य व्यापर में प्रयुक्त व्याकरणिक कोटि 'वाच्य' को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है।

वाच्य के प्रकार- वाच्य मुख्यत: तीन प्रकार के होते हैं-

1. कर्तृवाच्य (active voice)
2. कर्मवाच्य (passive voice)
3. भाववाच्य (intransitive voice)

उपर्युक्त तीन वाच्य के अलावा असमिया भाषा में 'कर्म कर्तृवाच्य' के प्रयोग भी मिलता है।

1. कर्तृवाच्य (active voice)- क्रिया के जिस रूप में कर्ता प्रधान हो और सकर्मक और अकर्मक दोनों क्रिया हो, उसे कर्तृवाच्य कहते हैं। कर्तृवाच्य के कर्ता में प्रथमा विभक्ति और कर्म में द्वितीया विभक्ति योग होते हैं। जैसे-

- रामें तोमाक मातिछे। (राम तुम्हे बुला रहा है।)

इस वाक्य में 'राम' कर्ता है उस कारण राम के साथ प्रथमा विभक्ति 'ए' और 'तुमि' में द्वितीय विभक्ति 'क' है और 'तोमाक' हुआ है। शून्य विभक्ति के योग से भी कर्तृवाच्य गठित होता है, जिसमें कर्म लुप्त होकर रहता है। जैसे-

- राम गल। (राम गया।)

कर्तृवाच्य सकर्मक और अकर्मक दोनों हो सकते हैं। जैसे-

- सकर्मक- रहिमें किताप पढ़िछे। (रहीम किताब पढ़ रहा है।)
- अकर्मक- सि पढ़िछे। (वह पढ़ रहा है।)

☞ कर्तृवाच्य- **आधारित क्रियापदों की रूप-रचना**

पुरुष	**वचन**	असमिया
उत्तम/प्रथम पुरुष	एकवचन	मइ चिठी लिखोँ।
	बहुवचन	आमि चिठी लिखोँ।
मध्यम/द्वितीय पुरुष	एकवचन	तइ चिठी लिख। तुमि चिठी लिखा। अपुनि चिठी लिखे।
	बहुवचन	तहँते चिठी लिख। तोमालोके चिठी लिखा। आपोनालोके चिठी लिखे।
अन्य/तृतीय पुरुष	एकवचन	स्वीटीये चिठी लिखे।
	बहुवचन	सिहँते चिठी लिखे।

असमिया भाषा में कर्ता के पुरुषानुसार क्रियापदों में अन्वित होती है। उक्त उदाहरणों में 'लिखोँ' क्रिया के अंतर्गत 'ओँ' विभक्ति प्रत्यय केवल प्रथम पुरुष का सूचक है, जो एकवचन एवं बहुवचन दोनों का सूचक हैं। 'लिख, लिखा, लिखे' क्रिया के अंतर्गत '0', '-आ' एवं '-ए' विभक्ति प्रत्यय केवल द्वितीय पुरुष का सूचक हैं। 'स्वीटीये/ सिहँते चिठी लिखे' वाक्य में 'लिखे' क्रिया के अंतर्गत '-ए' विभक्ति कर्तानुसार तृतीय पुरुष का सूचक है।

2. कर्मवाच्य (passive voice)- क्रिया के जिस रूप में कर्म प्रधान हो, जिसमें केवल सकर्मक क्रिया के वाक्य होते हों, उसे कर्मवाच्य कहते हैं। कर्मवाच्य के कर्ता में षष्ठी विभक्ति 'र' और तृतीया विभक्ति 'रे, दि, द्वारा' योग होता है। सामान्यत: विभक्ति युक्त क्रियापद कभी कभी लुप्त रहता है। जैसे-

- सीमार द्वारा चाह आना हब। (सीमा के द्वारा चाय लाई जाएगी।)

उपर्युक्त प्रथम वाक्य में 'सीमा' के साथ 'र' और 'द्वारा' युक्त हुआ है। कभी-कभी विभक्तियुक्त कर्ता पद अदृश्य हो कर रहता है। जैसे-

- गीत गोवा हैछे।
- रचना लिखा हैछे।

असमिया क्रिया के कर्मवाच्य रूप मिलने के लिए कुछ पद्धति अनुकरण करना पड़ता है। कुछ पद्धति निम्नलिखित हैं-

क) कर्मवाच्य में कभी-कभी 'कर्ता' में षष्ठी विभक्ति 'र' के बाद 'द्वारा' परसर्ग योग किया जाता है और कभी षष्ठी(संबंध) विभक्ति में ही रखा जाता है। जैसे-

- पुलिचर द्वारा चोरतो धरा हल/ पुलिचर हातत चोरटो धरा परिल।
- मधुर भात खोवा ह'ल/मधुर द्वारा भात खोवा ह'ल।

ख) देख्, हुन, वुज, पार आदि कुछ सिमित धातु में असमपिका के 'इ' विभक्ति योग करके कर्मवाच्य गठन किया जाता है। जैसे-

- राति तरा देखि।
- गरमर दिनत मेंघालय जाब पारि।

देख्, हुन, वुज, पार आदि कुछ सिमित धातु में असमपिका के 'इ' विभक्ति योग करके नकारात्मक क्रिया रूप भी गठन किया जा सकता है। जैसे-

- दिनत तरा नेदेखि।
- ठंडा दिनत मेंघालय जाब नोवारि।

कर्मवाच्य की निषेधात्मक वाक्य संरचना के अंतर्गत कर्ता में संबंध विभक्ति '-र + द्वारा' अव्यय से युक्त रहता है और निषेध सूचक 'न' समापिका क्रिया के पूर्व संलग्न स्थिति में प्रयुक्त होता है। जैसे-

मोर द्वारा खोवा नहय।

उक्त उदाहरणों में 'खोवा नहय' के स्थान पर 'खोवा नाजाय', 'खाब परा नहय' का भी प्रयोग होता है।

ग) धातु में 'आ' प्रत्यय योग करके 'हय' या 'जाय' सहायक क्रिया योग करके कर्मवाच्य गठन किया जाता है। जैसे-

- भाल कर्म करिले भाल फल पोवा जाय।
- प्रतिबछरे इयात बंती जलोवा हय।

कर्मवाच्य वाक्य में क्रिया पदबंध के अंतर्गत 'जा' और 'ह' धातुओं का विशेष महत्व हैं। ये दोनों रूप मानक हैं जिसमें अर्थ की दृष्टी से कोई भेद नहीं हैं लेकिन शैलीगत दृष्टी से भेद होते हैं। असमिया भाषा के कर्मवाच्य प्रधान वाक्यों में क्रिया पद अन्विति मुक्त रहता है और कर्ता पद के साथ संबंध विभक्ति 'र + द्वारा' प्रयोग होता है।

☞ कर्मवाच्य- **आधारित क्रियापदों की रूप-रचना**

पुरुष	वचन	वर्तमान काल
उत्तम/प्रथम पुरुष	**एकवचन**	मोर द्वारा चिठी लिखा हय।
	बहुवचन	आमार द्वारा चिठी लिखा हय।
मध्यम/द्वितीय पुरुष	**एकवचन**	तोर द्वारा चिठी लिखा हय। तोमार द्वारा चिठी लिखा हय। अपोनार द्वारा चिठी लिखा हय।
	बहुवचन	तहँतर द्वारा चिठी लिखा हय। तोमालोकर द्वारा चिठी लिखा हय। आपोनालोकर द्वारा चिठी लिखा हय।
अन्य/तृतीय पुरुष	**एकवचन**	स्वीटीर द्वारा चिठी लिखा हय।
	बहुवचन	लेखक सकलर द्वारा चिठी लिखा हय।
पुरुष	**वचन**	भूतकाल
उत्तम/प्रथम पुरुष	**एकवचन**	मोर द्वारा किताप पढ़ा ह'ल।
	बहुवचन	आमार द्वारा किताप पढ़ा ह'ल।
मध्यम/द्वितीय पुरुष	**एकवचन**	तोर द्वारा किताप पढ़ा ह'ल। तोमार द्वारा किताप पढ़ा ह'ल। अपोनार द्वारा किताप पढ़ा ह'ल।
	बहुवचन	तहँतर द्वारा किताप पढ़ा ह'ल। तोमालोकर द्वारा किताप पढ़ा ह'ल। आपोनालोकर द्वारा किताप पढ़ा ह'ल।
अन्य/तृतीय पुरुष	**एकवचन**	स्वीटीर द्वारा किताप पढ़ा ह'ल।
	बहुवचन	लेखक सकलर द्वारा किताप पढ़ा ह'ल।
पुरुष	**वचन**	भविष्यत काल
उत्तम/प्रथम पुरुष	**एकवचन**	मोर द्वारा चिठी लिखा हब।
	बहुवचन	आमार द्वारा चिठी लिखा हब।
मध्यम/द्वितीय पुरुष	**एकवचन**	तोर द्वारा चिठी लिखा हब। तोमार द्वारा चिठी लिखा हब। अपोनार द्वारा चिठी लिखा हब।
	बहुवचन	तहँतर द्वारा चिठी लिखा हब। तोमालोकर द्वारा चिठी लिखा हब। आपोनालोकर द्वारा चिठी लिखा हब।
अन्य/तृतीय पुरुष	**एकवचन**	स्वीटीर द्वारा चिठी लिखा हब।
	बहुवचन	लेखक सकलर द्वारा चिठी लिखा हब।

भाववाच्य (intransitive voice)- जिन वाक्यों में कर्ता और कर्म की प्रधानता न हो, केवल क्रिया या भाव प्रधान हो, उसे भाववाच्य कहते हैं। भूतकालिक कृदन्त शब्द के साथ 'হ (ह)' और 'যা (जा)' धातु से उत्पन्न होने वाला सहायक क्रिया से भाववाच्य गठन किया जाता है। जैसे-

- करा ह'ल।
- खोवा ह'ब।
- लिखा जाब।

भाववाच्य में कर्ता षष्ठी विभक्ति के रूप में मिलता है या अदृश्य होकर रहता है। यह वाच्य केवल तृतीय पुरुष के साथ होता है। भाव और कर्मवाच्य का रूप एक ही है केवल भाववाच्य में कर्म नहीं रहता है। जैसे-

- रहिमर खोवा ह'ल।
- हेइपिने जोवा हब।

कर्मवाच्य गठन प्रक्रिया के साथ भाववाच्य गठन प्रक्रिया एक जैसे ही है। दोनों वाच्य के क्रिया पद तृतीय पुरुष में होते हैं, प्रकृति के नियम अनुसार क्रिया अपने आप होता है। असमिया आधुनिक भाषाविज्ञान के आलोचना में भाववाच्य को कर्मवाच्य के अंतर्गत रखकर आलोचना किया जाता है।

कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य के अतिरिक्त 'कर्म कर्तृवाच्य (passive active voice)' असमिया भाषा में प्रयोग होता हैं।

कर्म कर्तृवाच्य- कर्ता के बिना कर्म सम्पादन करना समझाने वाले वाक्य ही कर्म कर्तृवाच्य है। जैसे-

- घर भाङिल।
- ब्रज परिल।
- गछ उघालि परिल।

उपर्युक्त घर, ब्रज, गछ आदि कर्म पद हैं। जिसमें कर्ता नहीं है। कर्म कर्तृवाच्य में भाववाच्य के जैसे सदा ही तृतीय पुरुष होता है।

संरचना के दृष्टि से कर्तृवाच्य रूप के साथ कर्म, कर्तृवाच्य का रूप अभिन्न है, केवल अर्थ की दृष्टि से दोनों वाच्यों के बीज पार्थक्य देखा जा सकता है। अतः कर्म कर्तृवाच्य का व्यवहार आधुनिक भाषा विज्ञान में सीमित है। इसी कारण आधुनिक भाषाविज्ञान में कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य स्वीकार करते हैं। कर्मवाच्य ही 'भाववाच्य' और 'कर्मकर्तृवाच्य' का अर्थ वहन करता है।

निष्कर्ष

प्रत्येक भाषा की अपनी एक संरचना होती है। असमिया भाषा में क्रिया केवल 'पुरुष' के अनुसार परिवर्तित होता है, वचन एवं लिंग व्याकरणिक विषय नही हैं अर्थात असमिया भाषा में केवल प्राणीवाचक शब्द का ही लिंग भेद किया जाता है। वाच्य भी व्याकरणिक कोटि है, जो क्रिया रूपों द्वारा व्यक्त होती है। लेकिन यह व्याकरणिक कोटि 'वक्ता की भावना' पर निर्भर है। अत: हम असमिया भाषा के वाच्य आधारित क्रियापदों की रूपरचना में निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं-

- असमिया भाषा में कर्म सरल रूप में हो या अन्य रूप में, क्रिया किसी भी स्थिति में कर्म से अन्वित नहीं करती। जैसे- विवेके भात खाले। (विवेक ने भात खाया।)
- विवेके रुटि खाले। (विवेक ने रोटी खायी।)
- असमिया भाषा में एक अथवा एक से अधिक 'कर्ता' होने पर 'प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय' पुरुष के अनुसार 'कर्ता' का 'कर्म' होता है।
- असमिया भाषा में कर्मवाच्य के अंतर्गत क्रिया संरचना में '-जा' एवं 'ह- 'धातु की प्रधानता रहती है। दोनों धातु एक दुसरे के स्थान पर प्रयुक्त हो सकती है, ये सदैव अन्य पुरुष में रहती है।
- असमिया भाषा में कर्मवाच्य के निषेध सूचक वाक्यों में समापिका क्रिया के पूर्व संलग्न स्थिति में प्रयोग होता है।
- असमिया भाषा में कर्मवाच्य की क्रिया संरचना केवल एक क्रिया की भी होती है। जैसे- राति सूर्य नेदेखि। (रात में सूर्य नहीं दिखाई देता।)
- असमिया भाषा में भाववाच्य के अंतर्गत कर्तापद संबंध विभक्ति '-रे' एवं '-र + द्वारा'' से युक्त रहता है।
- असमिया भाषा में भाववाच्य के कुछ वाक्यों में कर्ता सरल रूप में या प्रथम विभक्ति '-ए' से युक्त रहता है तथा क्रिया संरचना में समापिका क्रिया 'लागे' की प्रधानता रहती है। जैसे- मइ पढ़िब लागे।(मुझे पढ़ना है।)

संदर्भ :-

1. वर्मा, रामलाल. (1986). *हिंदी असमिया: व्याकरणिक कोटियां*. आगरा : केन्द्रीय हिंदी संस्थान.
2. कालीराम, मेंधी. (1978). *असमिया व्याकरण आरू भाषातत्व*. असम प्रकाशन परिषद.
3. गोस्वामी, गोलोकचंद्र. (1990). *असमिया वर्ण प्रकाश*. गुवाहाटी : बिना लाइब्रेरी.
4. डेका, धर्म सिंह. (1980). *रचना विचित्रा*. असम हाईस्कूल शिक्षक संस्था.
5. बोरा सैकिया, लीलावती. (2006). *असमिया भाषार रूपतत्व*. गुवाहाटी : बनलता प्रकाशन.
6. पाठक, डा. रमेंश. (2019). *उच्चतर असमिया व्याकरण*. गुवाहाटी : अशोक बुक स्टाल.
7. पाठक, डा. रमेंश. (2008). *असमिया भाषार इतिहास*. गुवाहाटी : अशोक बुक स्टाल.
8. पाठक, डा. रमेंश. (1980). *भाषा-विज्ञानर भूमिका*. गुवाहाटी : अशोक बुक स्टाल.

जे. सी. कुमारप्पा : अलक्षित व्यक्तित्व

डॉ. शंभू जोशी*
shambhujoshi@gmail.com

आलेख सार :

कुमारप्पा लगभग अलक्षित भारतीय अर्थशास्त्री रहे हैं। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम एवं भारतीय समाज के आर्थिक पुनर्निर्माण में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।भारतीय परिप्रेक्ष्य में अपने मूलभूत आर्थिक अध्ययन के कारण वे बहुत प्रासंगिक हो जाते हैं। गाँधीवादी अर्थशास्त्र उनके द्वारा प्रचलित की गयी शब्दावली है। ग्राम आधारित अर्थव्यवस्था और उसके विभिन्न आयामों पर उन्होंने न केवल सैद्धांतिक लेखन किया है अपितु विभिन्न प्रयोगों के माध्यम से उसमें निरंतर संशोधन भी किया। दुर्भाग्यवश वर्तमान पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उनके विचारों को दरकिनार कर दिया गया है तथापि भारतीय संदर्भ में अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण एवं पर्यावरण संरक्षण में उनके विचार आज भी काफी प्रासंगिक हैं।

बीज शब्द : *जे. सी. कुमारप्पा, अर्थव्यवस्था, ग्राम आधारित अर्थव्यवस्था, पर्यावरण संरक्षण।*

जे. सी. कुमारप्पा का पूरा नाम जोसफ चेल्लादुराई कुमारप्पा था। उनका जन्म 04 जनवरी 1892 को तंजावूर (तमिलनाडु) में एक ईसाई परिवार में हुआ था। उनके पिता श्री एस. डी. कारनेलियस तत्कालीन मद्रास सरकार के सार्वजनिक निर्माण विभाग में अधिकारी थे।

कुमारप्पा प्रारंभ से ही कुशाग्र थे। 12-13 वर्ष की उम्र में वह अपने पिताजी के साथ मद्रास लौटकर डवटन यूरोपियन स्कूल में भर्ती हुए। मेधावी होने के कारण इनका झुकाव इंजीनियरिंग की ओर था। गणित में बेहतर और कुशाग्र होने के बावजूद गणितकीय परीक्षा में कम अंकों के कारण इन्हें एकाउंटेसी पढ़ना पड़ा।

1913 में वह हॉवर्ड ओकले की सलाह से लंदन चले गए। वहाँ पाँच वर्षों में स्नातक हुए। 1919 में भारत आकर उन्होंने ऑडिटर के रूप में तथा डावरर्स कॉलेज ऑफ कॉमर्स में लेक्चरर का काम प्रारंभ किया। 1924 में इस फर्म से अलग होकर कारनेलियस एंड डावर नाम से आडिटिंग फर्म की स्थापना की।

अपने बड़े भाई जे. एम. कुमारप्पा के बुलाने पर वह कुछ दिनों अवकाश मनाने हेतु अमेरिका गये। उन्होंने सइराक्यूस विश्वविद्यालय से व्यावसायिक प्रशासन में बी. एस. सी की परीक्षा उत्तीर्ण की। प्रो. विलियम पेक के परामर्श को मानकर कोलंबिया विश्वविद्यालय जाकर एम. ए. की परीक्षा 1928 में उत्तीर्ण

* एसोशिएट प्रोफेसर, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

की। इसके बाद प्रसिद्ध विद्वान डॉ. एडविन रॉबर्ट एंडरसन सेलिगमेन के निर्देशन में 'सार्वजनिक वित्त व्यवस्था और हमारी दरिद्रता'(Public Finance and India's Poverty) विषय पर श्रेष्ठ शोध-प्रबंध लिखा। अंग्रेजों के अन्याय, शोषण एवं भारत को विनष्ट करने के खतरनाक इरादों ने उन्हें अंग्रेजों का विरोधी और प्रखर राष्ट्रवादी बना दिया था। इससे पूर्व डॉ. सेलिगमेन के अधीन डॉ. भीमराव अंबेडकर ने भी शोध कार्य किया था।

अपने लेखाकार्य को जारी रखने के ख्याल से वह 1929 में पुन: भारत लौट आए। अपनी पांडुलिपि को उन्होंने गाँधी जी को पढ़ने के लिए बम्बई में सौंप दी। गाँधी जी ने बताया कि शोध-प्रबंध को 'यंग-इंडिया'में श्रृंखला में प्रकाशित करने का विचार था। साथ ही अर्थशास्त्र की उनकी सोच का अपनी सोच के साथ साम्य देखकर कुमारप्पा को गुजरात विद्यापीठ में प्राध्यापक के रूप में नियुक्त किया।

कुमारप्पा केवल अंग्रेजी जानते थे जबकि विद्यापीठ में गुजराती, हिंदी में काम होता था। अत:गाँधी जी ने इस स्थिति को भॉपते हुए कक्षा अध्यापन के स्थान पर उन्हें आर्थिक सर्वेक्षण का काम सौंपा। विचार-विमर्श के बाद मातर तालुके के आर्थिक सर्वेक्षण करने का निर्णय लिया गया। भारतीय आर्थिक परिदृश्य के साक्षात अनुभव ने उनके विचारों को नयी दिशा दी। आगे चलकर यह सर्वेक्षण 'मातर तालुके का आर्थिक सर्वेक्षण' नाम से प्रकाशित हुआ।

1931 में कराची में सम्पन्न हुए कांग्रेस के सालाना अधिवेशन में इग्लैंड और भारत के मध्य वित्तीय संबंधों पर रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए समिति बनायी गयी जिसका संयोजन कुमारप्पा को बनाया गया। डी. एन. बहादुर, प्रो. के. टी. शाह भूलाभाई देसाई जैसे विद्वान सदस्यों के सहयोग से समिति ने दो माह में रिपोर्ट पूर्णकर कांग्रेस अध्यक्ष सरदार वल्लभभाई पटेल को सौंप दी। 1931 में यंग इंडिया के संपादन का भार कुमारप्पा पर आ गया। इसके बाद इंग्लैंड में राउंडटेबल कान्फ्रेंस के समय भी 'यंग इंडिया'का संपादन काम संभालना पड़ा।

फरवरी, 1931 को सरकार ने उनके लेखों के आधार पर उन पर मुकदमा चलाया और कठोर कारावास की सजा सुनाई। गाँधी -इरविन पैक्ट के बाद उन्हें छोड़ दिया गया। 1932 में गाँधी जी और महादेव देसाई की अनुपस्थिति में 'यंग इंडिया'का संपादन कार्य संभाला। अंग्रेजी शासन के अनैतिक कृत्यों और शोषण के विरूद्ध उनके अग्निलेखों के कारण उन्हें कारावास की सजा हुई। 1934 में उन्हें रिहा किया गया।

1934 की जनवरी में बिहार में भीषण भूकंप से काफी हानि हुई थी। राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में बिहार सेंट्रल रिलीफ कमेटी बनायी गई। इस पूरी व्यवस्था में मदद के लिए गाँधीजी जमनालाल बजाज को कोषाध्यक्ष और वित्तीय सलाहकार व इंटरनल ऑडिटर के रूप में कुमारप्पा को भेजा। कुमारप्पा ने अपने समर्पण, कठोरता और प्रबंधकीय कौशल से इसे पूरा करने में अपनी सारी क्षमता झोंक दी।

अखिल भारतीय कांग्रेस के 1934 के बम्बई अधिवेशन में जे. सी. कुमारप्पा कोगाँधी जी की सलाह और मार्गदर्शन में ग्रामोद्योग संघ नामक संस्था बनाने का अधिकार दिया गया। इसके मूल उद्देश्यों में उद्योगों का पुनर्जीवन व विकास, गाँवों की नैतिक व भौतिक उन्नति एवं अन्य कार्य शामिल थे। वर्धा में मगनवाडी ही अखिल भारतीय ग्रामोद्योग का प्रधान कार्यालय बना। 1935 में इसी स्थान से ग्रामोद्योग संबंधी समस्त गतिविधियाँ प्रारंभ हुई। कच्चे एवं छप्पर वाले मकानों में ही ग्रामीण पुनरुद्धार का भागीरथी प्रयत्न शुरू किया गया। मगनवाडी को ग्रामोद्योग का केंद्र बनाने की योजना को धीरे-धीरे साकार रूप दिया जाने लगा। मगनवाडी के समस्त भवनों का निर्माण कुमारप्पा के निर्देशन में ही हुआ था। आगे ग्रामोद्योग के विचार का प्रचार-प्रसार करने के लिए हिंदी व अंग्रेजी में 'ग्रामोद्योग पत्रिका' का प्रकाशन पूरा किया। इसे एक प्रकार से ग्रामोद्योग संघ का मुखपत्र भी कहा जा सकता था। यह मासिक पत्रिका अहिंसक अर्थव्यवस्था, ग्रामोद्योग के दर्शन, विचार, व्यवहार, प्रयोग, प्रशिक्षण इत्यादि पर प्रकाश डालती थी। इसका उद्देश्य एक साथ लोगों में जागरूकता और प्रशिक्षण करना था। उन्होंने ग्रामोद्योग का पूरा आंदोलन खड़ा कर दिया।

कुमारप्पा अपने पूरे प्राण-पण से इस कार्य में लग गए। गाँधी जी अपने समाचर-पत्रों के माध्यम से लगातार अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ की गतिविधियों के बारे में लिखते। कुमारप्पा ने इसी बीच 1935 में 'ग्राम-आंदोलन का दर्शन' नामक पुस्तक लिखी जो अहिंसक अर्थव्यवस्था सहित ग्राम विकास, ग्रामोद्योग: उसके उत्थान, विस्तार और आगामी योजना को प्रस्तुत करती थी।

अंग्रेजी सरकार ने उनकी गतिविधियों और आंदोलन में उनकी सहभागिता के कारण जेल कारावास की सजा सुनायी। 02 जनवरी 1945 को कुमारप्पा जेल से रिहा किया गए। उनकी स्थिति बहुत खराब हो गयी थी। बाहर आने पर उनके स्वास्थ्य में सुधार हुआ। इस जेल जीवन में उन्होंने 'ईसामसीह का व्यवहार और उपदेश'तथा 'स्थायी समाज व्यवस्था'नामक पुस्तकों को तैयार किया। गाँधी जी ने 'ईसामसीह का व्यवहार और उपदेश'संबंधी पुस्तक की भूमिका लिखकर जो लिफाफा दिया उस पर डी. डी. (डॉक्टर ऑफ डिविनिटी) लिखा। यह उपाधि सामान्यत: धर्मशास्त्र में महत्त्वपूर्ण अध्ययन करने वाले पादरियों को प्रदान की जाती है। दूसरी पुस्तक 'स्थायी समाज व्यवस्था'के लिफाफे पर डी.वी.आई (डॉक्टर ऑफ विलेज इंडस्ट्रीज) लिखकर गाँधी जी ने कुमारप्पा को भिजवाया। 'ईसामसीह का व्यवहार और उपदेश' पुस्तकका सार इसमें निहित था कि पश्चिम ईसा के उपदेशों का पालन नहीं कर एक कृत्रिम जीवन व्यतीत कर रहा था। वह नाममात्र के लिए ईसाई धर्म है।

1947 की शुरूआत में उन्हें अखिल भारतीय कांग्रेस कार्य समिति के सदस्य बनने का अवसर प्राप्त हुआ, परन्तु उन्होंने उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। गाँधी जी की उपस्थिति में संघ के व्यवस्थापक मंडल की बैठक 11 दिसम्बर 1947 को दिल्ली में सम्पन्न हुई। इस बैठक में गाँधी जी और कुमारप्पा क्रमश: संघ के अध्यक्ष और मंत्री चुने गए। अगले महीने गाँधी जी के देहावसान की खबर ने कुमारप्पा को विचलित कर दिया।

फरवरी 1948 को कांग्रेस अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कुमारप्पा की अध्यक्षता में कृषि-सुधार समिति का गठन किया। इस समिति का कार्य स्वतंत्र भारत में कृषि सुधार, खेतिहरों की स्थिति सुधार आदि के बारे में सुझाव देना था। विभिन्न जगहों का दौरा कर समिति ने जुलाई,1948 तक अपनी रिपोर्ट तैयार कर अध्यक्ष को सौंप दी और अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने इसका प्रकाशन भी कराया।

13-15 मार्च 1948 को सेवाग्राम में रचनात्मक कार्यकर्ताओं का सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में सर्वोदय समाज की स्थापना कर समस्त रचनात्मक संस्थाओं के एकीकरण हेतु योजना एवं समिति निर्मित करने की संस्तुति की गयी। कुमारप्पा को इसका कार्यभार सौंपा गया। बम्बई में हुई अगली बैठक में अखिल भारत सर्वसेवा संघ के निर्माण का निश्चय किया गया।

प्रारंभ से ही कृषि और ग्रामीण विकास के प्रति समर्पित कुमारप्पा ने कृषि एवं ग्रामोद्योग आधारित आर्थिक विकास की प्रक्रिया को मूर्तरूप देने के लिए और प्रयोग हेतु 59 वर्ष की आयु में अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ से विदा लेकर शेल्डोह गाँव में 18 मई 1951 को पन्नयी आश्रम के नाम से कृषि ग्रामोद्योग केंद्र की स्थापना की। इसका उद्घाटन आचार्य कृपलानी ने किया। तमिल में पन्नयी का अर्थ खेती है। यह अपने मौलिक सुझावों को क्रियान्वित करने का प्रयोग था। 1952 में कुमारप्पा ने आर्थिक समता मंडल/सोसायटी फॉर इकॉनामिक इक्विलिटी नामक संगठन बनाया। इस संगठन में वह प्रसिद्ध नास्तिक एवं नेता जी.रामचंद्र राव (जो गोरा के नाम से ज्यादा प्रसिद्ध हैं) के साथ सह-संस्थापक थे। इस संस्था ने कुमारप्पा की सलाह से कई सामाजिक-राजनैतिक-आर्थिक गतिविधियों का संचालन किया। इनका एक महत्त्वपूर्ण प्रयास पार्टीविहीन लोकतंत्र के लिए प्रयास करना भी था।

लगातार प्रवास, कड़े शारीरिक मानसिक श्रम और आजादी के उपरांत सरकार की गाँधी विचारों से दूरी इन तीनों कारणों से कुमारप्पा न केवल शरीर अपितु मन से भी टूटने लगे थे। काफी सोच विचार कर उन्होंने सक्रिय जीवन से अवकाश लेकर कालूपट्टी के गाँधी निकेतन आश्रम में विश्राम हेतु जाने का निर्णय लिया। पन्नयी आश्रम में व्यतीत अवधि में ही उन्होंने रूस, चीन और जापान की यात्राएं पूर्ण की। लगभग प्रत्येक यात्रा के संबंध में पुस्तकें भी लिखी। उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर समाजवादी देशों में भूमि व कृषि को लेकर जो अच्छे प्रयास किए गए, उन्हें खुले मन से स्वीकार किया। उनके इस स्वरूप को समर्थन और विरोध दोनों ही प्रतिक्रिया मिली। 1954 में अपनी सेहत के कारण उन्होंने पन्नयी आश्रम के प्रयोग से स्वयं को अलग कर लिया। बाद में इसे हिन्दुस्तानी तालीमी संघ को सौंपा गया।

1951 में चीन की यात्रा से पूर्व उन्होंने लंदन में प्रतिनिधि मंडल के आर्थिक सलाहकार के रूप में यात्रा की। इस दौरान उन्होंने वहाँ की युद्धोत्तर आर्थिक दशाओं का अध्ययन किया। शांतिवादियों से मुलाकात की और आगे चलकर युद्ध विरोधी अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन (सूसवरी) में प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया।

चीन के बाद वह जापान गए। जापानी समाज के जीवन के सुव्यवस्थित स्वरूप ने उन्हें मंत्रमुग्ध किया। यह सरकार के कारण नहीं बल्कि उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत का परिणाम था। जापान के सामाजिक जीवन में श्रम निर्मित स्थानीय वस्तुओं के प्रति अत्यन्त लगाव था। इसने वहाँ के कुटीर उद्योगों को उन्नत व्यवस्था में रखा।

मार्च, 1952 में कुमारप्पा की रूस यात्रा प्रारंभ हुई। 03-11 अप्रैल के बीच अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्रियों का एक सम्मेलन आयोजित किया गया था। यहाँ से वापस आकर जुलाई में विश्व शांतिसम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए बेबीलोन की यात्रा की। वहाँ से पूर्वी जर्मनी और चेकोस्लोवाकिया की यात्रा की। दिसम्बर में पेरिस होते हुए विश्व शांति कांग्रेस में शामिल होने वियना गए। वहाँ से हंगरी की यात्रा करते हुए रूस पहुँचे। यह यात्रा अगले वर्ष 25 जनवरी को भारत में लौटने पर समाप्त हुई। कुमारप्पा ने 21-29 मई 1954 के विश्व शांतिसम्मेलन में बर्लिन में भाग लिया। इस सहभागिता के बाद भी उन्होंने पूर्वी जर्मनी, बुल्गारिया, स्टाकहोम, कापेनहेगन, लंदन, पेरिस और लंका की यात्रा की। उनकी यात्राओं के विवरण की एक पुस्तिका 'लौह आवरण के पीछे की झांकी' प्रकाशित हुई।

लम्बे सार्वजनिक जीवन अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ की भागदौड़, पन्नयी आश्रम का प्रयोग, विदेश यात्राओं ने कमारप्पा के शरीर को जर्जर एवं कमजोर बना दिया था फिर भी अपने गुरु के सपनों को आकार प्रदान करने के लिए उन्होंने जी-तोड़ मेहनत की। विभिन्न बीमारियों के साथ कुमारप्पा लगातार काम करते रहे। 1953 में पुन: पक्षाघात ने उन्हें बहुत परेशान कर दिया। चिकित्सीय सेवा और परामर्श से वह ठीक हो गये परन्तु चिकित्सकों ने सलाह दी कि उन्हें सक्रिय जीवन से आराम ले लेना चाहिए। कुमारप्पा ने अपने अगले पड़ाव के रूप में गाँधी निकेतन आश्रम को चुना जो तमिलनाडु के मदुराई जिले के कालूपट्टी गांव के पास था। यह आश्रम एक तरह से दक्षिण भारत का मगनवाड़ी था। अपने आप में रचनात्मक कार्यक्रमों स्वदेशी, ग्रामोद्योग संबंधी गतिविधियों का केंद्र था। कार्यकर्ता प्रशिक्षण केंद्र भी काफी समय से संचालित हो रहा था। स्वदेशी, खादी व स्वावलम्बन का एक उत्कृष्ट उदाहरण था। 1940 से स्थापित यह आश्रम उनके आने के बाद और अधिक सुचारू गति से संचालित होने लगा। नवम्बर 1957 में उन्हें मद्रास के जनरल अस्पताल में भर्ती कराना पड़ा। इस बार लगभग 28 महीने के लिए वह अस्पताल में रहे। 04 जनवरी 1960 को उनका जन्मदिन बहुत सादगी के साथ मनाया गया। उनका स्वास्थ्य लगातार बिगड़ता चला गया। 30 जनवरी 1960 को गाँधी की हत्या के ठीक बारह बरस बाद इस सच्चे शिष्य ने अपनी देह का त्याग किया। यह भारतीय अर्थविचारों के एक युग का अवसान था।

अपने मार्गदर्शक की भाँति कुमारप्पा अहिंसक अर्थव्यवस्था का लक्ष्य लेकर चलते थे जो उनके वृहदतर लक्ष्य अहिंसक समाज निर्माण का एक अनिवार्य अंग था। अपने अनुभवों से कुमारप्पा यह अनुभव कर सकते थे कि पश्चिमी आर्थिक सिद्धांतों को उनकी आर्थिक संस्थाओं-प्रक्रियाओं को जस-का-तस लागू करना

किसी भी तरह से भारतीय समाज के लिए हितकर नहीं होगा। अधिकतम लाभ प्राप्ति के लक्ष्य से प्रेरित अर्थव्यवस्था के स्थान पर प्रकृति व बुनियादी जरूरतों का ख्याल रखते हुए अर्थव्यवस्था कुमारप्पा की प्राथमिकता थी। अपनी आर्थिक व्यवस्था के केंद्र में आम व्यक्ति को रखकर सोचने वाले कुमारप्पा भारतीय अर्थव्यवस्था को पश्चिमी अर्थव्यवस्था की नकल बनाने को तैयार नहीं थे। अमेरिका के अध्ययन प्रवास के दौरान ही वह पश्चिमी आर्थिक सिद्धांतों के नैतिकता के दायरे से बाहर रहने की कमी को समझ चुके थे। अतएव भारतीय परिप्रेक्ष्य में उन्होंने प्रकृति व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को आधार बनाकर अहिंसक अर्थव्यवस्था के लिए प्रयास किया।

1936 में प्रकाशित *ग्राम आंदोलन क्यों (वॉय द विलेज मूवमेंट)*[1] पुस्तक भारतीय अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है परन्तु इसे वह लोकप्रियता नहीं मिली, जिसकी यह हकदार थी। यह पुस्तक समाजवाद एवं पूँजीवाद को गाँधीवादी अर्थशास्त्री का सशक्त प्रत्युत्तर था। सामान्यत: आदर्शवादी दृष्टिकोण बताकर दरकिनार किए जाने वाले गाँधीवादी अर्थशास्त्र के सिद्धांतों और इसके प्रयोगों का परिचय कराती यह पुस्तक भारतीय संदर्भ में अर्थव्यवस्था के गठन का प्रस्ताव करती है।

कुमारप्पा पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं के इस हिंसक ढ़ाँचे ने जिन परिणामों को उत्पन्न किया, उन्हें संक्षेप में निम्नानुसार बताया जा सकता है[2]-

1. पूँजीवाद व्यक्ति की प्रेरणा व पहल को मान्यता देता है परन्तु समाज पर निजी हित को प्राथमिकता देता है। साम्यवाद समाज को प्राथमिकता देता है परन्तु व्यक्ति के व्यक्तित्व की अवहेलना करता है। इसलिए एक में स्वार्थ व लालच तो दूसरे में वर्ग-विशेष से घृणा आधार है। अतएव इन अतिरेकों से बचना चाहिए।
2. दोनों ही वाद-पूँजीवाद व साम्यवाद-मनुष्यों के सबसे अच्छे गुणों को प्रकट करने में असफल रहे हैं
3. केंद्रीकरण कई बुराईयों व अव्यवस्थाओं का स्रोत है
4. मूल आवश्यकताओं की पूर्ति के स्थान पर आरामदायक व विलासिता की वस्तुओं के उत्पादन पर जोर
5. लाभ केंद्रित उत्पादन
6. केंद्रीकृत उत्पादन से स्वस्थ विकास संभव नहीं है
7. मशीन को मनुष्य से ऊपर स्थान प्रदान करना
8. हिंसा का प्रयोग अनिवार्य

कुमारप्पा उपरोक्त तथ्यों को भलीभाँति परख चुके थे तथा स्थायी स्रोतों के दोहन पर ध्यान देने तथा उन्हें विकसित करने पर जोर देते रहे। प्रकृति के संदर्भ में चक्रीय अवधारणा को उन्होंने महत्व का स्थान दिया

है। कुमारप्पा के विचारों की उपयोगिता आज के संदर्भ में भी खरी उतरती है। शूमाखर जैसे विचारक ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *'स्मॉल इज ब्यूटीफुल'*[3] में कुमारप्पा के विचारों का उल्लेख किया है।

कुमारप्पा के अनुसार विकास की आधुनिक पद्धति ने मनुष्य के जीवन को 'अवरूद्ध और पशुकोटि'[4] का बना दिया है। इसलिए उन्होंने आधुनिक विकास के ढाँचे की तुलना 'भेडियों के गुट'[5] से की है क्योंकि यह व्यवस्था मनुष्य को सिर्फ उपभोक्ता मानकर अधिक से अधिक मुनाफा कमाने पर जोर देती है तथा इस क्रम में अनिवार्यता : हिंसा करती है। इसके अतिरिक्त यह व्यवस्था मनुष्य जीवन एवं उसकी गुप्त-शक्तियों (रचनात्मकता) की निर्मम हत्या भी करती है इसलिए यह व्यवस्था हमें निश्चित ही विनाश की ओर ले जाती है।

कुमारप्पा इसके वरक्स 'विकास' की जिस अवधारणा की बात करते हैं, उसके केन्द्र में प्रकृति एवं मनुष्य है क्योंकि कुमारप्पा के लिए मनुष्य की सुप्त शक्तियों के विकास के लिए अनुकूल वातावरण निर्माण करना ही सच्चे विकास का उद्देश्य है। उनके शब्दों में :

> *''यदि विकास को स्थायित्व ओर अहिंसा प्राप्त करनी हो, तो उपभोक्ता को प्राधान्य देना होगा और हम एक चीज उसकी व्यक्तिगत ज़रूरत और रूचि के अनुसार पैदा करती होगी। यह तभी संभव हो सकता है जब उपभोक्ता वस्तुएँ उसकी आवश्यकतानुसार उपभोक्ता के देख-रेख में अपनी-अपनी जगह पर ही बने, खास कर घरों में।''*[6]

कुमारप्पा के अनुसार स्वयं-पूर्ण एवं संगठित गाँव जिसे गाँधी ग्राम स्वराज्य नाम देते है, बनाना हमारा ध्येय होना चाहिए। उनके शब्दों में :

> *''अहिंसक विकास के लिए जिस गाँव में जो योजनाएँ बनायी जाए वे उस गाँव के फायदे की तो होनी ही चाहिए पर साथ ही साथ समूचे देश की बड़ी योजना के विरोधी नहीं होनी चाहिए।''*[7]

कुमारप्पा इस वैकल्पिक प्रारूप में निम्न कार्यक्रमों पर जोर देने की बात करते हैं-

1. कृषि
2. ग्रामीण-उद्योग
3. सफाई, आरोग्य एवं मकान
4. ग्रामों की शिक्षा
5. ग्रामों का संगठन
6. ग्रामों का सांस्कृतिक विकास। [8]

कुमारप्पा ऐसी आर्थिक व्यवस्था के पक्षधर थे जिसमें 'गाँव स्वावलंबी बनें और शहरों की जरूरतें भी पूरी करें। इस प्रकार के प्रयत्न में करोड़ों व्यक्तियों को आजीविका मिलेगी और मुद्रा-वितरण अधिक अच्छी

तरह होगा। गरीबी दूर करके धन उत्पन्न कराने का यही एक स्थायी उपाय है'[9]। साथ ही उत्पादन प्रणाली को विकेंद्रीकृत एवं स्थानीयता के अनुसार रूपान्तरित कर ऐसी व्यवस्था को उत्तम बताते हैं 'जिसमें उत्पादन के तरीके इस तरह बाँटे जाते हैं कि लोगों का वातावरण और परिस्थितियाँ ऐसी हों कि उनके बाजार और रिवाज बनाये रखकर वह संस्था स्वयं अपनी उपस्थिति से लाभ पहुँचा सके। ऐसा विभाजन आर्थिक की अपेक्षा मनुष्यत्व पूर्ण होगा (पृ. 51)।

कुमारप्पा ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि धीरे-धीरे कम होते जाते संसाधनों पर टिकी अर्थव्यवस्था अस्थायी-क्षण भंगुर–होती है। जबकि प्रकृति की अपनी प्रक्रिया में संसाधन नष्ट और पुन: उत्पादित होते हैं। यह प्रकृति का पुनरूत्पादन है, यही प्रक्रिया स्थायी है। अतएव प्रकृति की इस प्रक्रिया को पोषित एवं पल्लवित करने वाले व्यवस्था ही स्थायी व्यवस्था कही जा सकती है। यही वह आधार है जिस पर स्थायी एवं अहिंसक अर्थरचना एवं समाज रचना की जानी चाहिए।

भारतीय संदर्भों में भारतीय मूल्यों के अनुरूप अर्थशास्त्र के सिद्धांतों को गढ़ रहे थे। इस प्रक्रिया में *इकॉनॉमी ऑफ परमानेंस*[10](1945) पुस्तक की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। पश्चिमी अर्थशास्त्र 'मानव केंद्रिदता' के इर्द-गिर्द बुना गया शास्त्र है जबकि कुमारप्पा 'प्रकृति केंद्रितता' के माध्यम से मुख्यधारा के अर्थशास्त्र के बरअक्स अहिंसक अर्थशास्त्र को प्रस्तुत करते हैं। कुमारप्पा स्पष्टत: यह रेखांकित करते हैं कि प्रकृति अनुकूल क्रिया-व्यवहार संपादित कर ही एक शाश्वत / स्थायी व्यवस्था का निर्माण किया जा सकता है। इसलिए उनके विचारों में पर्यावरण संरक्षण की अनुगूँज अनुभव कर सकते हैं।

उनके अनुसार भारत के लिए बनने वाली योजना की शुरूआत किसान/खेती से होनी चाहिए। इसी नींव पर देश की आर्थिक व्यवस्था निर्मित होनी चाहिए। मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति ही योजना की बुनियाद होनी चाहिए। भारत की श्रम शक्ति के समुचित दिशानिर्देशन से भारत काफी लाभ उठा सकता है।

अहिंसा, लोकतंत्र, विकेंद्रीकरण जैसे मूल्य और आदर्श उनके व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में रचे-बसे थे। एक अहिंसक अर्थव्यवस्था की स्थापना उनका ध्येय रही। अपने लेखन और प्रयोगों के माध्यम से उसे प्राप्त करने का सतत प्रयास करते रहे। लोकतंत्र उनके लिए एक राजनीतिक प्रणाली मात्र नहीं बल्कि जीवन पद्धति का आदर्श थी। व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक जीवन में उन्होंने लगातार इस लोकतांत्रिक भावना को बनाए रखा। जिन संस्थाओं की उन्होंने स्थापना की उनमें किसी भी तरह के केंद्रीकरण एवं आलोकतांत्रिक प्रक्रियाओं का विरोध किया। लोकतंत्र की यह भावना राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, यहाँ कि धार्मिक क्षेत्र भी लागू करने का प्रयास किया।

उन्होंने शांति व अहिंसा के अपने विचार को व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तक सीमित न रखकर सम्पूर्ण विश्व में अहिंसात्मक व्यवस्था की स्थापना का स्वप्न देखा। सत्य व अहिंसा के माध्यम से ही मानव कल्याण व विश्व शांति स्थापित हो सकती है, यह उनका दृढ़ विश्वास था। अपने अध्ययन से वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि

युद्ध मानव जाति के लिए कल्याणकारी नहीं है। युद्ध को रोकने का उपाय उसके मूल कारणों को दूर करना है। युद्ध कच्चे माल और बाजार की प्रतिस्पर्धा का परिणाम होते हैं, जो मनुष्य की अपूर्ण होने वाली लालसाओं से जन्म लेते हैं। इसलिए स्वार्थ के स्थान पर परमार्थ, संग्रह के स्थान पर असंग्रह, लोभ के स्थान पर संयम, क्षणभंगुर दृष्टि के स्थान पर सातत्य का आचरण ही युद्ध रोकने का असली उपाय है। अपने विचारों को समय-समय पर अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलनों में प्रस्तुत कर शांति के सच्चे स्वरूप व प्रक्रिया को बतलाने का अथक प्रयास किया।

कुमारप्पा अपने आप में एक संस्था थे। विद्यार्थी, शोधार्थी, एकाउंटेंट, प्रोफेसर, ग्रामोद्योग शिल्पी, स्वदेशी समर्थक, कुशल संपादक, स्वतंत्रता सेनानी, नयी तालीम समर्थक आदि कई भूमिकाओं का एक साथ निर्वाह करने वाले कुमारप्पा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और भारतीय ग्रामीण पुनरुद्धार परम्परा में अग्रणी स्थान रखते हैं।

संदर्भ :

[1] कुमारप्पा, जो. का. (1936) (पुनर्मुद्रित 2007). *गांव आंदोलन क्यों*.(प्रस्तावना में), वर्धा : मगन-संग्रहालय समिति.

[2] वही, पृ. 12-16

[3] शूमाखर, ईएफ. (1973*). स्मॉल इज ब्यूटीफुल : ए स्टडी ऑफ इकोनॉमिक्स एज इफ पीपुल मैटर*. लंदन: ब्लोंड एंड ब्रिग्स.

[4] कुमारप्पा, जो.कॉ. (1945 (2007 पुनर्मुद्रण). *स्थायी समाज-व्यवस्था*. वर्धा: मगन संग्रहालय समिति, पृ. 80

[5] वही, पृ. 136

[6] वही, पृ. 80

[7] वही, पृ. 139

[8] वही, पृ. 141

[9] कुमारप्पा,जो.का. (1936) (पुनर्मुद्रित 2007). *गांव आंदोलन क्यों*. पृ. 53

[10] कुमारप्पा, जो. कॉ. (1945) (2007 पुनर्मुद्रण). *स्थायी समाज –व्यवस्था*. वर्धा : मगन संग्रहालय समिति.

आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में सांस्कृतिक संचार की भूमिका
('धुमकुडिया' स्थल के संदर्भ में)

डॉ. अमृत कुमार*

amrit.kumar@cuj.ac.in

सारांश

प्रकृति का संरक्षण व संवर्धन भारतीय संस्कृति की विशिष्टता है। प्रकृति के सानिध्य में अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं कर लेना भारतीय समाज को आत्मनिर्भर बनती रही है। पश्चिमी मुनाफाखोरी प्रवृत्ति के दबाव में अधिकांशतः भारतीय समाज का नकारात्मक चित्रण कर भारतीय समाज की विशिष्टता को हतोत्साहित कर सीमित करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र के अनुसार परंपरागत सांस्कृतिक संचार को आधुनिक संचार माध्यमों से ज्यादा प्रभावी एवं ज्यादा आत्मनिर्भर बनाने वाली कहा जा सकता है। आज देश की आवश्यकता देश के अंदर मौजूद 'सांस्कृतिक विशिष्टता' के संचार की है, जिससे आत्मनिर्भरता का लक्ष्य पूरा किया जा सके।

कुंजी शब्द: संस्कृति, परंपरा, आत्मनिर्भरता।

भूमिका

सामान्यतः किसी समाज, देश आदि की प्रथाएँ, विचारधाराएँ, विश्वास आदि; संस्कृति को प्रस्तुत करते हैं। जो कला, विश्वास और सामाजिक संस्थाओं सहित जीवन के सभी तरीको से पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होते हैं। आज हम इस तथ्य से सहमत हैं कि संस्कृति के बिना आत्मनिर्भरता प्राप्त नहीं हो सकती है। हमने आधुनिक विकास के नाम पर पश्चिमी संस्कृति का अंधानुकरण करके देख लिया है कि विश्वगुरु कहलाने वाले देश में एक ऐसे वर्ग का उदय हुआ जो विदेशों में शिक्षा प्राप्त करना अपनी प्रतिष्ठा समझता था। केवल शिक्षा ही नहीं पश्चिमी संस्कृति ने हमारी अर्थव्यवस्था, समाजव्यवस्था, मानसिक अवस्था तक को गुलाम बनाने का प्रयास किया है। काफी हद तक उन्हें सफलता मिली भी है। लेकिन पश्चिमी कुप्रयासों के साथ-साथ पश्चिमी मानसिकता वाले शासकों के कुप्रयासों के बावजूद भी भारतीय संस्कृति समाप्त नहीं हुई। धीरे-धीरे कुप्रयासों के अंधकारों का छंटना शुरू हुआ और भारतीय संस्कृति का प्रकाश फिर से जनमानस के समक्ष आने लगा। अब स्थिति यह बनती जा रही है कि लोग अब अपनी समस्याओं का समाधान 'भारतीय संकृति' में देखने लगे हैं। आज हम शिक्षा, शोध, तकनीकी, चिकित्सा, अर्थ आदि सभी क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता के लक्ष्य के साथ निरंतर आगे बढ़ रहे हैं।

* **सहायक प्रोफेसर, जनसंचार विभाग, झारखंड केंद्रीय विश्वविद्यालय, रांची**

आत्मनिर्भता के लिए सांस्कृतिक संवर्धन तथा सांस्कृतिक संवर्धन के लिए सांस्कृतिक संचार का प्रभावी होना अनिवार्य है। सांस्कृतिक संचार के माध्यम से ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में सांस्कृतिक तत्वों का संचार होता है तथा अगली पीढ़ी भी प्रकृति के सानिध्य में आर्थिक, सामाजिक व राजनितिक रूप से आत्मनिर्भर बनता है। आदिवासी समाज में सांस्कृतिक संचार की प्रक्रिया काफी प्रभावशाली है। आदिवासी समाज के कई ऐसे संस्थान है जिनके माध्यम से सांस्कृतिक संचार प्रभावी तरीके से किया जाता है। इन्हीं में से एक है 'धुमकुडिया'। एक ऐसा स्थल जहाँ युवा शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों से परिचित होते हैं। जब सांस्कृतिक गतिविधियों की बात होती है तो उसके अंतर्गत यहाँ आर्थिक गतिविधि भी शामिल है। विभिन्न सामाजिक महत्त्व के विषयों पर चर्चाएँ होती हैं। नृत्य व गायन भी इसका एक पक्ष है। यह सांस्कृतिक रूप से चली आ रही व्यवस्था है। ऐसे संस्थाओं के माध्यम से समाज में एकता भी बढ़ती है, संस्कृति से युवाओं का परिचय भी होता है तथा आत्मनिर्भरता भी आती है। एक साथ बैठकर सामाजिक विषयों पर बातचीत करना तथा विकास से संबंधित अपने विचारों को प्रस्तुत करना युवाओं को अपने समाज से जोड़कर रखता है। कुल मिलाकर पारिस्थितिकी तंत्र, सामाज व स्वास्थ्य जैसे विषयों का अनुभव जनित ज्ञान प्राप्त युवा किसी सरकार से मदद माँगने की बजाय स्वयं आत्मनिर्भर होने का गुण प्राप्त कर लेता है।

भारत देश में आत्मनिर्भता का स्वर्णिम इतिहास रहा है लेकिन समय के साथ बाह्य प्रभावों के कारण आत्मनिर्भरता धीरे-धीरे खत्म होती रही और वर्तमान स्थिति तो ऐसी हो गई है कि परिवार के एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानीय सामाजिक संस्कृति नगण्य व पश्चिमी संस्कृति ज्यादा प्रभावी रूप से दिखने लगी है। संस्कृति ही किसी समाज को आत्मनिर्भर बनती है तथा जिस भी क्षेत्र में स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र पर आधारित संस्कृति की तुलना में बाह्य संस्कृति का ज्यादा प्रभाव होगा उन क्षेत्रों में सरकार लगातार विकासीय योजनाओं में अर्थ का निवेशकर भी आत्मनिर्भरता नहीं ला सकती है।

पूर्व तथा वर्तमान में विभिन्न सरकारों द्वारा विकास संबंधी कई योजनाओं का निर्माण हुआ लेकिन आत्मनिर्भरता का लक्ष्य आज तक पूरा नहीं हो सका। इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि आदिवासी समाज तक सरकार की विभिन्न विकासीय योजनाओं का अन्य समाज के मुकाबले न्यूनतम पहुँच है। फिर भी आत्मनिर्भरता अन्य समाज की तुलना में आदिवासी समाज में सर्वाधिक है। इसका मुख्य कारण आदिवासी संस्कृति की वह विशिष्टता है जिसके अंतर्गत विकासीय रणनीति बाह्य पारिस्थितिकी तंत्र से प्रभावित न होकर स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र, सर्वसम्मती, स्वशासन व प्रकृति संवर्धन से प्रभावित होकर बनाई जाती है। अपनी संस्कृति में स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र के संवर्धन को शामिल करना आदिवासी समाज को सतत विकास के साथ जोड़कर रखता है जिस कारण से वैश्विक मंदी जैसी स्थिति भी आदिवासी क्षेत्रों में न्यूनतम प्रभावी या अप्रभावी हो जाता है।

आज हम आत्मनिर्भरता के राष्ट्रीय लक्ष्य को पूरा करने के लिए अपने राष्ट्र की सांस्कृतिक गतिविधियों का पुनः अध्ययन कर रहे हैं। अध्ययन के दौरान भारत में उपस्थित विभिन्न समाज की सांस्कृतिक

विशिष्टता का अध्ययन कर उस विशिष्टता को राष्ट्र के समक्ष लाना अनिवार्य आवश्यकता है। झारखंड राज्य आदिवासी स्मिता पर आधारित राज्य है। राज्य में विभिन्न आदिवासी समाज रहते हैं। अपनी सांस्कृतिक विशिष्टता को अगली पीढ़ी में सर्वाधिक सफलतापूर्वक संचार आदिवासी समाज के द्वारा ही किया जाता है। परिणामतः आदिवासी समाज भारत के अन्य समाज की तुलना में अधिक आत्मनिर्भर है।

सांस्कृतिक संचार

मानव जीवन की प्रत्येक गतिविधि संस्कृति के साथ जुड़ी हुई हैं। मानव की कल्पना संस्कृति के बिना संभव नहीं है। हम मानव को वर्तमान व भविष्य के लिए जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निधि को संचित तथा संवर्धित कर संचारित करना चाहिए वह है, संस्कृति। अगर हमने संस्कृति का संचार नहीं किया तो वर्तमान और हमारी आने वाली पीढियाँ मानव होने पर गर्व नहीं कर सकेगी।

सांस्कृतिक संचार मौखिक, अमौखिक तथा लिखित तीनों प्रकारों से होता है। साधू-संत और बुजुर्ग बोलकर भी संस्कृति की शिक्षा देते हैं। बच्चा परिवार व समाज के सदस्यों के व्यव्हार का अवलोकन कर भी संस्कृति की शिक्षा प्राप्त करता है। संस्कृति पर आधारित साहित्यों का अध्ययन कर भी हम संस्कृति की शिक्षा लेते हैं। किसी भी माध्यम या विधि से संस्कृति का क्षैतिज व लंबवत विस्तार सांस्कृतिक संचार कहलाता है। संस्कृति की विशालता के अंतर्गत मानव जीवन एवं प्रकृति की समस्त गतिविधियाँ आती हैं इसी के सामान, सांस्कृतिक संचार का विस्तार भी मानव एवं प्रकृति के प्रत्येक पक्षों को स्पर्श करता है।

सांस्कृतिक विशेषताओं की बात करें तो भारतीय संस्कृति की कथनी और करनी में अंतर नहीं होता। अगर नदी, जंगल, पहाड़ को पूजनीय माना गया है तो केवल प्रतीकात्मक रूप से इनकी पूजा ही नहीं की जाती वरन इन प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण व संवर्धन भी प्रतिबद्धता के साथ किया जाता था। भारतीय आंदोलनों को अगर पढ़ा जाए तो समाज के किए गए आंदोलनों में प्रकृति को बचाने से संबंधित आंदोलन प्रमुखता से सामने हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि भारतीय संस्कृति ने व्यक्तिगत स्वार्थ से ज्यादा प्रकृति को महत्ता दिया जिससे पारिस्थितिकी तंत्र की परिधि में रहने वाला हर प्राणी आत्मनिर्भर हुआ था।

निष्कर्ष:

आधुनिक संचार माध्यमों द्वारा विकास हेतु जिस प्रकार का संचार किया गया उनमें पश्चिमी मापदंडों को विकास हेतु जरुरत बताकर प्रस्तुत किया जाता रहा। आधुनिक संचार माध्यमों के द्वारा पश्चिमी संस्कृति का अंधानुकरण हमारे देश को सांकृतिक साम्राज्यवाद का शिकार बनाता चला गया। राजनीतिक पत्रकारिता, आर्थिक पत्रकारिता, खेल, पेज थ्री पत्रकारिता इत्यादि को मीडिया ने महत्त्वपूर्ण मानकर इनके बारे में लगातार संचार किया। संस्कृति के नाम पर केवल पर्व-त्यौहार की रिपोर्टिंग कर खानापूर्ति की जाती रही। परिणामतः लोग संस्कृति का मतलब केवल पर्व-त्यौहार को मनाना समझने लगे तथा अपनी संस्कृति को विकास हेतु अप्रभावी मानने लगे। जबकि ऐसा नहीं था, आधुनिक संचार माध्यमों के द्वारा संस्कृति के सभी पक्षों को जनता के समक्ष ईमानदारी से प्रस्तुत नहीं किया गया।

धुमकुडिया के माध्यम से होने वाले संचार के उपरांत युवा एवं समाज में आत्मनिर्भरता आती है। यह आत्मनिर्भरता समाज के मध्य संबंधों को और मजबूत करती है। व्यक्ति समाज के प्रति गौरव का अनुभव करता है। ऐसी संस्थाओं के माध्यम से आने वाली आत्मनिर्भरता वास्तव में स्थाई होती है तथा प्रकृति का संवर्धन करती है। धुमकुडिया स्थलों के माध्यम से संचारित सांस्कृतिक संचार आधुनिक संचार माध्यमों से ज्यादा प्रभावी एवं ज्यादा आत्मनिर्भर बनाने वाली है। आज देश की आवश्यकता देश के अंदर मौजूद सांस्कृतिक विशिष्टता के संचार की है जिससे आत्मनिर्भरता का लक्ष्य पूरा किया जा सके। एक बात स्पष्ट है कि संस्कृति से शिक्षा प्राप्त कर सरकार के द्वारा अगर विकास संबंधी योजनाएँ बनाई जाती हैं, तो देश आत्मनिर्भरता प्राप्त कर सकता है। अन्यथा, देश में आर्थिक प्रगति तो हो सकती है, किंतु आत्मनिर्भता का लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता। अतः सरकार और समाज दोनों को सांकृतिक संचार को सर्वाधिक प्राथमिकता देनी चाहिए।

संदर्भ :-

World Bank Group Publications, World Bank. (2021*). Learnings From Community-Based Small-Scale Irrigation in Tribal Areas of Jharkhand*, India। World Bank Group.

Kumari, R. (2021). *धुमकुड़िया: इतिहास एवं संस्कृति* अंक 1

Mahawar, D. (2021). *Cultural Study of Oraon and Munda Tribes*. AAYU PUBLICATIONS.

Roy, S. C. (1999). *Oraon Religion and Customs*. Gyan Publishing House.

Roy, S. C. (2018). *The Orāons of Chōṭā Nāgpur*. Abhijeet Publications.

Srivastava, R. (1992). *Changing Values and Tribal Societies*. Inter-India Publications.

Vatsyayan, K. (2019). *Role of Culture in Development*. D.K. Printworld.

Hofstede, G, Hofstede, G. J., & Minkov, M. (2010). *Cultures and Organizations: Software of the Mind,* Third Edition (3rd ed.). McGraw-Hill Education.

Aparajita, U. (1994). *Culture and Development (Tribal Studies of India, Series T, 167).* Inter-India Publications.

Tylor, E. B. (2010). *Primitive Culture: Researches into the Development of Mythology, Philosophy, Religion, Art, and Custom (Cambridge Library Collection - Anthropology)* (Reprint ed.). Cambridge University Press.

Monaghan, L., Goodman, J. E., & Robinson, J. (2012). *A Cultural Approach to Interpersonal Communication: Essential Readings (2nd ed.).* Wiley-Blackwell.

Hartley, J. (2019). *Communication, Cultural and Media Studies: The Key Concepts* (Routledge Key Guides) (5th edl). Routledge.

200 ईसापूर्व से 250 ईसवी, मध्यकाल और ब्रिटिश काल में आर्थिक परिदृश्य

सन्तोष कुमार सिंह* **santosh17sengar @gmail.com**

प्रो. सुधीर कुमार सिंह† **sudhirjpu@gmail.com**

सारांश

प्राचीन भारतीय इतिहास में अनेक राजवंशों के अंतर्गत भारत की समृद्ध अर्थव्यवस्था का प्रमाण मिलता है। शको, कुषाणों, सातवाहनों और तमिल राज्यों के संदर्भ में देखा जाये तो निःसंदेह अर्थव्यवस्था जो कि सुदृढ़ रूप में देखी जा सकती है। मिलिन्दपन्हों में 75 व्यवसायों का उल्लेख है। हस्तशिल्प में हाथी दांत और शीशे से बनी वस्तुओं और मणि माणिक्य का काम भी होता था।

मध्यकाल में सलतनतकाल और मुगलकाल में क्षेत्रीय प्रसार तो हुआ लेकिन देखा जाये तो आर्थिक क्षेत्र में कोई व्यापक बदलाव नहीं हुआ। ब्रिटिश काल में यूरोपीय कम्पनियों के आगमन के बाद से भारत का औपनिवेशिक दोहन प्रारंभ हुआ।

मुख्य शब्द - अर्थव्यवस्था, औपनिवेशिक, जनआंदोलन, मध्यकाल, ब्रिटिश काल, शोषण, सत्याग्रह

प्रस्तावना :

भारतीय इतिहास को राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विकास के दृष्टि से देखा जाये तो निःसंदेह रूप से आर्थिक विकास का घटना क्रम में बदलाव होता रहा है। जहाँ एक ओर शको, कुषाणों और सातवाहनों के काल तक इतिहास में आर्थिक बदलाव नहीं रहे अर्थात आर्थिक विकास क्रमशः परिवर्तित होता है जो कि एक सकारात्मक रूप है।

सल्तनत काल में दिल्ली सल्तनत की स्थापना के बाद से देखा जाये तो कह सकते हैं कि गुलाम वंश, खिल्जी वंश, तुगलक वंश, सैय्यद वंश और लोदी वंश के दौर में आर्थिक विकास में बदलाव भी होते रहे हैं। प्रारंभिक हस्तकारी उद्योग से लेकर स्थानीय उद्योगों को प्रोत्साहन मिला है।

* **पीएच. डी. शोध छात्र, इतिहास विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा**

† **प्रोफेसर, इतिहास विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा**

मुगल काल में बाबर के आगमन से लेकर अकबर, जहांगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब के समय तक भारतीय अर्थव्यवस्था में व्यापक तौर पर बदलाव नहीं हुआ। हालांकि यूरोपीय कम्पनियों के आगमन से जो ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता का शोषण प्रारंभ हुआ उसने भारतीय अर्थव्यवस्था को कमजोर किया। भारतीय अर्थव्यवस्था के ब्रिटिश शासन में शोषण का केन्द्र बन गयी। गौरतलब है कि धन निष्कासन के सिद्धांत के उद्घाटन के बाद ब्रिटिश सत्ता का शोषण का चक्र स्पष्ट हुआ।

भारतीय अर्थव्यवस्था मूलत: ब्रिटिश काल के पूर्व तक संतुलित रूप से अग्रसर थी। हालांकि मूलत: जीवन निर्वाह कृषि की मूल अवधारणा ही प्रमुख केन्द्र बिंदु था। गौरतलब है कि व्यापक रूप से वाणिज्यिक फसलों का उत्पादन यूरोपीय कम्पनियों की तुलना में नहीं था। वाणिज्यिक कृषि मूलत: ब्रिटिश औपनिवेशिक सभा के कारण परिवर्तित हुयी। ब्रिटिश काल में वाणिज्यिक कृषि को प्रोत्साहित किया गया जो कि बाद में जीवन निर्वाह कृषि के लिए मुश्किल हो गयी।

शोध उद्देश्य:

200 ईसा पूर्व से ब्रिटिश काल के अवधि के दौरान व्यवहारिक पहलुओं को उजागर करना। भारतीय इतिहास के आर्थिक पहलुओं की विवेचना के दौरान सामान्य तौर पर उन तथ्यपरक बिन्दुओं पर दृष्टि आवश्यक है ताकि व्यवहारिक तथ्यों का अन्वेषण किया जा सके।

शोध विधि:

इस शोध विधि में विश्लेषणात्मक और विवरणात्मक व्याख्या की गई है। इसके लिए द्वितीयक स्रोत का सहारा लिया गया है। साथ ही प्रकाशित ग्रंथों के साथ-साथ विभिन्न पत्रिकाओं के आलेख के साथ-साथ इंटरनेट माध्यमों का भी सहारा लिया गया है। गौरतलब है कि विभिन्न समाचार-पत्रों में भी आर्थिक विकास के क्रमों को साधारणतया व्यवस्थित तौर पर प्रकाशित किया गया है।

शोध- विश्लेषण

आर्थिक विकास के क्रम में, भारतीय उपमहाद्वीपीय में परिवर्तन की एक शृंखला शामिल है। निश्चित तौर पर विभिन्न शासकों राजवंशों तथा स्थानीय घटनाक्रमों के मद्देनजर व्यवहारिक तौर पर परिवर्तन दृष्टिगोचर हैं।

शको, सातवाहनों और कुषाणों और आरंभिक दक्षिण के राज्यों में शिल्प, और आर्थिक विकास का सर्वांगीण विकास हुआ। गौरतलब है कि मिलिन्दलन्हो में 75 प्रकार के व्यवसायों का उल्लेख आता है। द गारलैंड आफ मदुरै नामक प्रसिद्ध तमिल ग्रंथ में शिल्पो और विभिन्न के कारीगरों का वर्णन है। हस्तशिल्प में हाथी दांत तथा सीसे से बनी और मनी-माणिक्य तराशने के काम का उल्लेख किया जा सकता है। गौरतलब है

कि सिक्कों के निर्माण का कार्य भी इस दौर में शामिल है। प्रसिद्ध इतिहास रामशरण शर्मा लिखते हैं कि रोमन साम्राज्यों के साथ विकसित व्यापारिक संबद्ध के कारण ही कुषाण और सातवाहन साम्राज्यों में शहरों का विकास आसानी हुआ होगा। उन दिनों भारत, रोमन साम्राज्य के पूर्वी भाग और मध्य एशिया के साथ व्यापार करता था। पंजाब और पश्चिमी उत्तरप्रदेश के नगरों का विकास भी उत्तर-पश्चिमी भारत में कुषाण सत्ता का केन्द्र होने की वजह से हुआ होगा। भारत में अधिकांश कुषाण शहर मथुरा से तक्षशिला तर उत्तर-पश्चिम या उत्तरापथ पर स्थित थे।[1]

तुर्कों के आगमन के पश्चात भारतीय उप महाद्वीप पर विशेषकर उत्तर भारत में भयानक नरसंहार हुये तथा इसके बाद उन्होंने धीरे-धीरे उत्तर भारत पर नियंत्रण स्थापित किये। माना जाता है इस दौर में नगरों का विकास हुआ। इब्नबतूता दिल्ली को तत्कालीन समय बहुत बड़ा नगर बताता है।

इतिहासकार सतीश चन्द्र लिखते हैं कि "सल्तनत काल में नगरों का और नगरीय जीवन के पुनरुत्थान का हवाला दे चुके हैं। तुर्क शासन वर्ग को नगरीय जीवन खास तौर पर पसन्द था।"[2]

मुगल काल के सन्दर्भ में इतिहासकार सतीश चन्द्र लिखते हैं कि "सत्रहवीं सदी के अंत तक मुगल साम्राज्य अपने क्षेत्रीय प्रसार के चरम पर था। लेकिन इस काल में उसे अनेक राजनीतिक और प्रशासनिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। इस दौरान कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं आया। फिर भी इस काल में सामाजिक और आर्थिक प्रगति हुयी।

भारत में यूरोपीय कम्पनियों के आगमन से ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता ने भारतीय उपमहाद्वीप का सीधा उपयोग शोषण के रूप में किया। ब्रिटिश सत्ता का उद्देश्य भारत को कंगाल करके ब्रिटेन को आर्थिक रूप से मजबूत बनाना था। इतिहासकार विपिन चन्द्र लिखते हैं कि "भारत के विशाल साम्रज्य को हथिया लेने के बाद इस पर नियंत्रण रखने और शासन चलाने के लिए ईस्ट इंडिया कम्पनी को उपयुक्त तरीके इजाद करने पड़े। 1757 से 1857 तक की लम्बी अवधि के दौरान कम्पनी की प्रशासनिक नीति अकसर बदलती रही। फिर भी उन्होंने अपना मुख्य लक्ष्य कभी आंखों से ओझल नहीं होने दिया।"[3] निश्चित तौर पर भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास का क्रम प्रत्येक काल में परिवर्तित होता रहा।

संदर्भ :

1. शर्मा, राम शरण. (2018). *प्राचीन भारत का इतिहास*. दिल्ली : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. पृ. 216

2. चन्द्र, सतीश. (2019). *मध्यकालीन भारत*. हैदराबाद : ओरिएंट ब्लैकस्वान. पृ. 290

3. चंद्र, विपिन. (2021). *आधुनिक भारत का इतिहास*. हैदराबाद : ओरिएंट ब्लैक्स्वान. पृ. 70

हिन्दी कविता में 'रूप विधान'

डॉ. मंजु लाल*

manjulal 181@gmail.com

सारांश :

साहित्य में रूप विधान के द्वारा सजीव चित्र उपस्थित किये जाते हैं और यह कल्पना और अनुभव का एक ऐसा सम्मिश्रण है जिससे कविता का निर्माण होता है। कल्पना मानव मस्तिष्क की एक विशिष्ट प्रक्रिया है जो अपने सचेष्ट क्षणों में ग्रहीत छाया-छवियों को कल्पना के द्वारा परिपूर्णता प्रदान कर सचित्र भाषाई बिम्ब का निर्माण करता है। प्रस्तुत को उदीप्त करने के लिए अप्रस्तुत की योजना की जाती है। काव्य में ऐसी ही अप्रस्तुत योजना प्रभावोत्पादक तथा भावोत्तेजक मानी जाती है जिससे हमारा भाव जगत का चिरकालिक परिचय होता है।

बीज शब्द : *कल्पना, रूप-विधान, सचित्र भाषा, स्मरण, प्रत्यक्ष, कल्पित रूप, रस, गंध, नाद, भावभूमि, प्रस्तुत, अप्रस्तुत, इन्द्रियानुभूति, मानवमन, अतीत, सजीव, चेतनमन, अवचेतनमन, रसानुभूति।*

विस्तार:

रूप विधान इंद्रिय ज्ञान की अभिव्यक्ति है। अर्थात् हम अपनी पांच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा (श्रवण, चक्षु, घ्राण, स्पर्श तथा जिह्वा) वस्तुओं का अनुभव करते हैं। उन अनुभवों और अनुभूतियों को कविता में व्यक्त करना ही रूप विधान का मुख्य प्रयोजन है।

'एक समय के इंद्रिय-ज्ञान के लेखे-जोखे को कविता में प्रस्तुत कर देना ही रूप विधान है।'[1]

कविता में सबसे सुन्दर और सजीव कल्पना चित्र अथवा रूप विधान वही है। जिसका अनुभव हमें इन्द्रियों द्वारा हो सके, जिसे हम स्पर्श कर सकें, देख सकें और सुन सकें। [2]

रूप विधान का निर्माण शब्दों से नहीं होता बल्कि वह तो इन्द्रियानुभूति मात्र है।[3]

यह मानसिक पुनरुत्पत्ति है जिसका प्रादुर्भाव शब्दों के माध्यम से देखी हुई, सुनी हुई, स्पर्श की हुई और सूंघी हुई वस्तुओं द्वारा होता है। अतः रूप-विधान मानसिक चित्रों के रूप में अनुभवों की अभिव्यक्ति का नाम है।[4]

'कल्पना चित्र या रूप-विधान एक नन्हा-सा शब्द चित्र है, जिसका उपयोग कवि अथवा लेखक अपने भावों एवं विचारों की व्याख्या करने तथा उसे बोधगम्य और स्पष्ट करने के लिए करता है।[5]

कल्पना मानव मस्तिष्क की एक विशिष्ट प्रक्रिया है जो अपने सचेष्ट क्षणों में उन नूतन और अनेक-रूप छाया-छवियों का बिम्ब ग्रहण किया करती है जो कभी दृष्टि-पथ या अनुभूति की परिधि में आ जाने के कारण

* **विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, डोरण्डा महाविद्यालय, राँची**

अन्तःपटल पर सुप्त अथवा जागृत संस्कारों के रूप में पड़ी रहती है जबकि रूप-विधान उस कल्पना के उन सचेष्ट क्षणों की परिपूर्णता की स्वतः स्फुरित निष्पत्ति या सचित्र भाषा है।

एक गुण से विधायक है और दूसरा सहज विधान, सर्जन अन्दर की कारण-रूप- अन्वति की कारण-रूप-फलान्विति। कल्पना सप्राण होने के लिए रूप में लय होना चाहती है जबकि अदृश्य रेखाओं में निखरा हुआ रूप जीवन की रंग-रेखा की प्राप्ति के निमित्त कल्पना का मुखापेक्षी हुआ करता है। दोनों प्रकृति से भिन्न है पर अस्तित्व की रक्षा के हेतु परस्पर मिलकर एक पृथक अस्तित्व का निर्माण करती है जो काव्य को प्राण, रूप और रंग देने के निमित्त धरती से अम्बर तक सब कुछ प्रस्तुत करती है।

कवि जिस विषय को अपने पाठकों या श्रोताओं के समक्ष उपस्थित करना चाहता है उसके प्रति उसकी स्वतः एक निष्ठा, अनुभूति या भावना होती है। वह स्वयं उस विषय से विभावित होकर उसमें इतना तन्मय हो जाता है कि वह उसकी एकान्त अनुभूति से तुष्ट न होकर अपनी निष्ठा या भावना को ज्यों का त्यों किसी दूसरे के हृदय में संक्रांत कर देना चाहता है। संक्रांति अथवा दूसरे के हृदय में अपनी अनुभूति को प्रविष्ट कर देने की भावना इतनी बलवती हो जाती है कि सहसा सृष्टि के समस्त साधन उनकी सहायता करने के लिए मानस-बिम्ब बनकर स्फुरित होने लगते हैं और इन्हीं मानस-बिम्बों के सहारे वह अपने काव्य का रूप-शृंगार करता है। मानस विम्ब के साक्षात करने की क्षमता उसी प्रकार सिद्धि से प्राप्त होती है जैसे किसी योगी को अंतर्दृष्टि प्राप्त हो।

मन की यह प्रकृति है कि जहाँ एक ओर बीती हुई घटनाओं, देखी हुई वस्तुओं, सुनी हुई बातों, चखे हुए स्वादों और छुये हुए स्पर्शों का स्मरण दिलाता है वहाँ उसमें एक विशेष दोष भी है कि वह उन्हें वेग से विस्मृत भी करता है। यह स्मरण और विस्मरण की क्रिया मन का स्वाभाविक गुण होने पर भी कुछ परिस्थितियों से भावित भी होती रहती है-जैसे जब कभी ऐसे संस्कार या संपर्क होते हैं जब संसर्ग की वस्तुओं का साक्षात्कार होते हैं, तत् संबंधी यादें ताजा हो जाती है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रूप विधान की तीन कोटियाँ बाँटी है : (1) प्रत्यक्ष रूपविधान (2) स्मृत रूप विधान (3) कल्पित रूप विधान।

प्रत्यक्ष के अन्तर्गत रूप, रस, गंध, नाद तथा स्पर्श आते हैं। स्मृति दो प्रकार की होती है- विशुद्ध स्मृति और प्रत्यक्षाश्रित स्मृति। मानव मन अपने वर्तमान को अतीत से सम्बन्धित करके देखने का अभ्यासी होता है। कभी-कभी अतीत की घटनाओं का स्मरण करके आत्मविभोर हो उठता है उस समय वह वर्तमान से उठकर अतीत की उस भाव भूमि पर पहुँच जाता है जहाँ पहुँचकर एक विशेष आनंद का अनुभव करता है। यही आनंद का घरातल रस का कार्यक्षेत्र है। "किन्तु रति, हास और करुण से संस्मरण ही अधिकरण रसाकोटि में आते हैं।" स्मृति और प्रत्यभिज्ञान में बड़ा अटूट संबंध है। किसी खंडहर को देखकर अतीत की स्मृतियाँ बिजली की भाँति मानस पटल पर कौंध जाती- वे यह याद दिला जाती है कि यह वही स्थल है जहाँ हमने वर्णमाला का पहला अक्षर सीखा था, यह वही पेड़ है जिसकी एक टहनी तोड़कर गुरुजी ने मुझे पीटा था, आदि आदि। इस प्रकार

अतीत सजीव होकर वर्तमान के साथ कल्पना का एक अक्षय भंडार खोल देता है जिसे कवि या भावुक देख-देखकर अघाता नहीं।"

कल्पित रूप विधान का मूल स्रोत प्रत्यक्ष रूप विधान और स्मृति रूप विधान ही माना जाता है। जीवन में जिन बातों को हमने देखा या सुना है अथवा जिन्हें हम प्रत्यक्ष रूप से देख या सुन रहे हैं उन्हीं से कल्पित रूप विधान अपने निर्माण की क्रिया-प्रक्रिया के उपादानों को जुटाता है। यही कल्पित रूप विधान अपने साथ के स्वरूप को साकार करता है। किसी तथ्य या वस्तु की मार्मिकता का बोध कराने के लिए उसका मूर्तरूप सामने प्रस्तुत कर देता है।

प्रस्तुत को उद्दीप्त करने के लिए अप्रस्तुत की योजना की जाती है। काव्य में ऐसी ही अप्रस्तुत - योजना प्रभावोत्पादक तथा भावोत्तेजक मानी जाती है जो हमारी भावभूमि के सन्निष्ट होती है, जिससे हमारा चिरकालीक परिचय है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों की शोध के अनुसार मन के तीन स्तर माने गए हैं। चेतन, उपचेतन तथा अवचेतन। चेतन की परिधि, धारणा, विचार, भावना तथा विवेक आते हैं किन्तु चेतन मन को अपदस्थ कर उपचतेन और अवचेतन ने उसका स्थान घेर लिया है। कहा जाता है कि आधुनिक युग में शील, सदाचार तथा मर्यादा की मोटी दीवारों को पार कर हमारी अनंत इच्छाएँ तथा अभिलाषाएँ पूर्णरूप से प्रस्फुटित न होकर भीतर ही भीतर कुंठित होकर अवचेतन मन में बैठ जाती है। इस मनोवैज्ञानिक खोज ने आधुनिक काव्यात्मक संवेदनाओं तथा रचना प्रक्रियाओं को अत्यधिक प्रभावित किया है। आधुनिक कविता या प्रयोग वादी कविताओं में दमित अहं का विस्फोट अधिक देखा गया है।

योगी अरविंद ने भी मानवीय चेतना के विभिन्न कोठों की खोज की है, उन सब कोठों में पहुँचना मानव शक्ति के बाहर की बात है। अतः उन भावनाओं को अंकित करने के लिए अमोघ स्वप्न शक्ति अनिवार्य है। अति यथार्थ वादियों की पैठ चेतना के गहन अंतराल में नहीं हो पाती इसी कारण उनकी कृतियाँ उखड़ी-उखड़ी और रहस्यमयी रहती हैं।

योगी अरविंद का कथन है कि हमारे धर्मनीति तथा साहित्य के अधिकांश अंश अवचेतन मन से प्रेरित होकर लिखे जाते हैं जो यौन भावना से चालित होता है, किन्तु सारा का सारा साहित्य अवचेतन मन की क्रिया-प्रक्रिया मानने को वे तैयार नहीं।

उदाहरण :

1) पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश,
पल-पल परिवर्तित प्रकृतिवेश।
मेखलाकार पर्वत अपार,
अपने सहस्र दृग सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बार-बार।

नीचे जल में निज महाकार
जिसके चरणों में पला ताल
दर्पण सा फैला है विशाल।।
पल्लव, पंत।

2) दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है,
वह संध्या सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे।
परिमल, निराला।

3) तीस कोटि सन्तान नग्नतन
अर्ध क्षुधित, शोषित, निरस्त्रजन,
ग्राम्या, पंत।

निष्कर्ष :

इस प्रकार कविता में रूप विधान कवि की वेदना, अनुभूति आदि से उठती है। और वह अपने भावों की तीव्रता को कल्पना चित्र के माध्यम से मूर्त चित्र उपस्थित करता है। ऐसा वह काव्य के लक्षणा शक्ति या व्यंजनाशक्ति के द्वारा करता है।

संदर्भ :

1. Fogle, Richard Harter. (1949). *The Imagery of Keats and Shelley: A Comparative Study*. The University of North Carolina Press. Pp. 3-4

2. Coffin, Robert P. Tristram. (1942). *The Substance That Is Poetry*. New York: Macmillan Company. p. 15

3. Perry, Biss. (2016). *A study of poetry*. Notion Press. pp. 48, 94-95.

4. Recurt, Miss Adiv. *New method for the study of Literature*. p. 24-27

5. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. (2020). *रस मीमांसा*. दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ. 277

6. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. (2021). चिंतामणि, भाग-1. दिल्ली: नई किताब प्रकाशन.

7. पाण्डेय, पंडित रामखेलावन. *काव्य और कल्पना*. पटना : श्री अजंता प्रेस लिमिटेड.

Financial Literacy in India - Unlocking Potential for Economic Growth and Social Equity

Dr. Atul Kumar Karn* **atulkarn@live.in**

Dr. Abhishek Chauhan† **chauhan020284@gmail.com**

ABSTARCT

Financial literacy is a critical yet often neglected component of holistic education, with only 27% of India's population possessing adequate financial knowledge. This research paper explores the current state of financial literacy in India, its implications for individuals and the broader economy, and strategies to enhance financial education. The lack of financial literacy contributes to social inequality, hinders economic growth, and impacts personal financial well-being. Financially illiterate individuals are more vulnerable to debt traps, poor investment decisions, and predatory financial practices. At the macroeconomic level, this illiteracy results in lower savings and investment rates, inefficient capital allocation, and reduced entrepreneurial activities. To address these issues, integrating financial education into school curricula, leveraging technology and social media, developing comprehensive financial education applications, and fostering partnerships with non-profits and think tanks are essential strategies. Government initiatives also play a crucial role in promoting financial literacy. By implementing these strategies, India can empower its citizens, reduce financial vulnerabilities, and drive sustainable economic growth, ultimately contributing to social equity and a more resilient economy.

Keywords: ***Financial literacy, India, economic growth, social inequality, financial education, digital financial tools, entrepreneurship, government initiatives, financial well-being, capital formation.***

* **Assistant Professor, Sarala Birla University, Ranchi, Jharkhand ,**

† **Assistant Professor , Sarala Birla University, Ranchi, Jharkhand**

Introduction

In recent decades, the emphasis on soft skills, physical education, health, and vocational training has grown within educational boards and ministries. However, financial education has often been overlooked in our pursuit of a holistic education system. The consequences of this oversight are apparent: regrettable investments, stress during tax filing, and financial reliance on friends and family during difficult times. The lack of financial education is particularly detrimental to disadvantaged communities, deepening social inequality. Nevertheless, its impact is also significant among the privileged classes. In India, only 27% of the population is financially literate, indicating that only one out of every five Indians is equipped to manage one of the most crucial aspects of human well-being. This research paper delves into the current state of financial literacy in India, its implications, and strategies to improve financial education for sustainable economic growth and social equity.

Chronological Review of Financial Literacy in India: Early Initiatives and Historical Context

Before the 2000s, financial literacy in India was not a significant focus area for policymakers or educational institutions. Financial education was rarely included in school curricula, and public awareness about personal finance management was minimal. The traditional banking system was the primary financial institution, and access to financial services was limited, especially in rural areas.

2000-2010: Initial Steps Towards Financial Inclusion

The early 2000s marked the beginning of efforts to promote financial inclusion. The Reserve Bank of India (RBI) and various government bodies started recognizing the importance of bringing the unbanked population into the formal financial system. Initiatives such as the Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana (PMJDY) aimed to increase bank account penetration among the economically disadvantaged.

2005-2010: Emergence of Financial Literacy Programs

During this period, the first structured financial literacy programs were introduced. The RBI launched the Financial Literacy and Credit Counselling Centres (FLCCs) in 2007 to provide basic financial education and credit counselling. These centers aimed to educate people about banking services, savings, investments, and managing credit.

2010-2020: Expansion and Technological Integration

Financial literacy initiatives gained momentum between 2010 and 2015. The Securities and Exchange Board of India (SEBI) and other financial regulators started focusing on investor education. SEBI's Investor Protection and Education Fund (IPEF) conducted various programs to educate investors about the securities market.

2015-2020: Technological Advancements and Digital Financial Literacy

The proliferation of smartphones and internet connectivity significantly impacted financial literacy efforts. Digital platforms and mobile applications began offering financial education content. The government's push for digital transactions through the Digital India initiative further highlighted the need for digital financial literacy.

Key initiatives included:

National Centre for Financial Education (NCFE): Established to promote financial education across the country through various programs and collaborations.

RBI's Project Financial Literacy: Aimed at disseminating information regarding the central bank's roles and functions, along with basic banking concepts.

2017: Launch of Financial Education Strategy

In 2017, the RBI launched the National Strategy for Financial Education (NSFE) 2017-2022, outlining a comprehensive framework for financial education. This strategy

emphasized the need for a coordinated approach among various stakeholders, including regulators, educational institutions, and the private sector.

2020-Present: Enhancing Financial Literacy Amidst a Digital Revolution

In 2020, the RBI released an updated National Strategy for Financial Education for the period 2020-2025. This strategy aimed to create a financially aware and empowered India. Key focus areas included integrating financial education into the school curriculum, using technology for widespread dissemination of financial knowledge, and increasing awareness of consumer rights and responsibilities.

Post-2020: Rise of Financial Influencers and EdTech Platforms

The rise of social media and financial influencers has played a crucial role in spreading financial literacy, especially among the younger population. Financial influencers on platforms like YouTube, Instagram, and Twitter provide accessible and engaging content on personal finance topics.

2023: Continued Emphasis on Digital Financial Literacy

The ongoing digital revolution continues to shape financial literacy efforts. The increased use of digital payment systems, online banking, and investment platforms underscores the need for robust digital financial literacy programs. Government and private sector initiatives focus on providing comprehensive and accessible financial education through mobile applications, online courses, and interactive tools.

The Current State of Financial Literacy in India

Financial literacy in India is alarmingly low, with only 27% of the population possessing basic financial knowledge. This deficiency spans across various socio-economic classes, affecting both the economically disadvantaged and the middle and upper-middle classes. For economically backward individuals, the lack of financial

literacy exacerbates social inequality by limiting their ability to access and effectively use financial services. Basic financial tasks such as opening bank accounts, applying for loans, and understanding financial products remain challenging. Moreover, a significant portion of the population remains unaware of beneficial government schemes such as the Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana (PMJDY) and the Stand-Up India Scheme, missing out on vital support.

Implications of Financial Illiteracy

Financial illiteracy has far-reaching implications for both individuals and the broader economy. On an individual level, it leads to poor financial decision-making, increased vulnerability to debt traps, suboptimal investment choices, and susceptibility to scams and predatory practices. These issues hinder wealth accumulation, asset building, and overall financial well-being, perpetuating income inequality and slowing economic growth.

At the macroeconomic level, financial illiteracy results in lower savings and investment rates, hindering capital formation and limiting resources for productive activities. It also reduces financial market participation, affecting the efficiency of financial intermediation. Furthermore, inadequate financial literacy hampers entrepreneurship, as aspiring business owners struggle with financial planning, risk management, and securing funding. This limitation stifles job creation, innovation, and overall economic productivity.

The Importance of Financial Education

Promoting financial literacy is crucial for empowering individuals, reducing financial vulnerabilities, and fostering economic growth. It helps individuals manage debt, plan for retirement, save for emergencies, and make informed financial decisions. Financial education also extends its benefits to the macroeconomic level by enhancing capital formation, increasing investment rates, and improving financial market efficiency. Additionally, it encourages entrepreneurship, leading to job creation and economic innovation.

Strategies to Improve Financial Literacy

Improving financial literacy requires a multifaceted approach involving various stakeholders, including the government, educational institutions, non-profits, and private sector organizations. Some key strategies include:

Integrating Financial Education into the Curriculum:

Incorporating financial literacy programs into school and college curriculums can equip young individuals with essential financial skills from an early age. This education should cover topics such as budgeting, saving, investing, debt management, and retirement planning.

Leveraging Technology:

The widespread use of smartphones and digital platforms provides an opportunity to deliver financial education more conveniently and accessibly. Financial education apps and online resources can offer interactive learning experiences, expense tracking, goal setting, investment analysis, and educational content that users can access at their own pace.

Utilizing Social Media and Influencers:

Financial influencers on social media have proven effective in engaging and educating the younger generation. Their simplified approach and relatable content make financial education more accessible and engaging. However, it is essential to ensure the accuracy and reliability of the content shared on these platforms.

Developing Comprehensive Financial Suites:

Creating comprehensive financial education applications that cover various topics, including budgeting, investing, debt management, and retirement planning, can provide a holistic approach to financial literacy. These suites should be tailored to meet the diverse needs of different audience segments.

Partnerships with Non-Profits and Think Tanks:

Collaborating with non-profits and think tanks can facilitate the large-scale dissemination of curated financial education content. These partnerships can help reach beneficiaries across different strata of society and provide targeted financial literacy programs.

Government Initiatives:

Government-led initiatives play a crucial role in promoting financial literacy. Programs such as the Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana (PMJDY) and the Stand Up India Scheme should be complemented with financial education components to maximize their impact. Additionally, public awareness campaigns can highlight the importance of financial literacy and encourage individuals to seek financial education.

Conclusion

India's young and dynamic population holds immense potential for driving economic growth and development. However, to compete globally and ensure equitable wealth distribution, it is imperative to invest in the financial education of the population. By promoting financial literacy, we can empower individuals to make informed financial decisions, reduce financial vulnerabilities, and contribute to a stronger and more resilient economy. The journey towards financial literacy requires a collaborative effort from all stakeholders, leveraging technology, education, and innovative strategies to unlock India's full economic potential.

References:

Agarwal, S., Driscoll, J. C., Gabaix, X., & Laibson, D. (2009). The Age of Reason: Financial Decisions over the Life-Cycle and Implications for Regulation. **Brookings Papers on Economic Activity**, 2009(2), 51-117. https://doi.org/10.1353/eca.0.0067

Atkinson, A., & Messy, F. (2012). Measuring Financial Literacy: Results of the OECD / International Network on Financial Education (INFE) Pilot Study. **OECD Working**

Papers on Finance, Insurance and Private Pensions, No. 15. https://doi.org/10.1787/5k9csfs90fr4-en

Bhushan, P., & Medury, Y. (2013). Financial Literacy and its Determinants. **International Journal of Engineering, Business and Enterprise Applications**, 4(2), 155-160.

Cole, S., Sampson, T., & Zia, B. (2011). Prices or Knowledge? What Drives Demand for Financial Services in Emerging Markets? **The Journal of Finance**, 66(6), 1933-1967. https://doi.org/10.1111/j.1540-6261.2011.01696.x

Grohmann, A., Klühs, T., & Menkhoff, L. (2018). Does Financial Literacy Improve Financial Inclusion? Cross Country Evidence. **World Development**, 111, 84-96. https://doi.org/10.1016/j.worlddev.2018.06.020

Lusardi, A., & Mitchell, O. S. (2014). The Economic Importance of Financial Literacy: Theory and Evidence. **Journal of Economic Literature**, 52(1), 5-44. https://doi.org/10.1257/jel.52.1.5

National Council of Educational Research and Training (NCERT). (2019). **Financial Literacy for School Students: Concepts and Activities**. NCERT.

Reserve Bank of India. (2017). **National Strategy for Financial Education (NSFE): 2017-2022**. RBI. https://www.rbi.org.in/Scripts/BS_PressReleaseDisplay.aspx?prid=41877

Sahu, T. N., Das, B. P., & Mishra, P. K. (2013). Financial Literacy: Concept and Review. **International Journal of Social Economics**, 40(3), 208-226. https://doi.org/10.1108/03068291311283630

Suryanarayana, M. H., & Das, D. (2014). Financial Literacy in India: Evidence and Implications. **International Journal of Social Economics**, 41(10), 1045-1063. https://doi.org/10.1108/IJSE-06-2013-0138

NOTES FOR AUTHORS

PADCHINHA: Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

1. Submissions

Authors should send all submissions and resubmissions to padchinhahindi@gmail.com or gandhikhadi@gmail.com some articles are dealt with by the editor immediately, but most are read by outside referees. For submissions that are sent to referees, we try to complete the evaluation process within one month. As a general rule, Padchinha operates a double-blind peer review process in which the reviewer's name is withheld from the author and the author's name is withheld from the reviewer. Reviewers may at their own discretion opt to reveal their name to the author in their review, but our standard policy is for both identities to remain concealed.

Absolute technical requirements in the first round are: ample line spacing throughout (1.5 or double), an abstract, adequate documentation using the author-date citation system and an alphabetical reference list and a word count on the front page (include all elements in the word count). Regular articles are restricted to an absolute maximum of 10,000 words, including all elements (title page, abstract, notes, references, tables, biographical statement, etc.).

2. Types of articles

In addition to Regular Articles, Padchinha publishes the Viewpoint column with research-based policy articles, Review Essays, Book Review and Special Data Features.

3. The manuscript

The final version of the manuscript should contain, in this order:

(a) title page with name(s) of the author(s), affiliation

(b) Abstract

(c) Main text

(d) List of references

(e) Biographical statement(s)

(f) Tables and figures in separate documents

(g) Notes (either footnotes or endnotes are acceptable)

Authors must check the final version of their manuscripts against these notes before sending it to us.

The text should be left justified, with an ample left margin. Avoid hyphenation. Throughout the manuscripts, set line spacing to 1.5 or double.

The final manuscript should be submitted in MS Word for Windows.

4. Language

Padchinha is a Bilingual Journal, i.e. English and हिंदी. The main objective of an academic journal is to communicate clearly with an international audience.

Elegance in style is a secondary aim: the basic criterion should be clarity of expression. We allow UK as well as US spelling, as long as there is consistency within the article. You are welcome to indicate on the front page whether you prefer UK or US spelling.

5. The abstract

The abstract should be in the range of 200-300 words. For very short articles, a shorter abstract may suffice. The abstract is an important part of the article. It should summarize the actual content of the article, rather than merely relate what subject the article deals with. It is more important to state an interesting finding than to detail the kind of data used: instead of 'the hypothesis was tested', the outcome of the test should be stated. Abstracts should be written in the present tense and in the third person (This article deals with...) or passive (... is discussed and rejected). Please consider carefully what terms to include in order increasing the visibility of the abstract in electronic searches.

6. Title and headings

The main title of the article should appear at the top of pg. 1, followed by the author's name an institutional affiliation. The title should be short, but informative. All sections of the article (including the introduction) should have principal subheads. The sections are not numbered. This makes it all the more important to distinguish between levels of subheads in the manuscripts – preferably by typographical means.

7. Notes

Notes should be used only where substantive information is conveyed to the reader. Mere literature references should normally not necessitate separate notes; see the section on references below. Notes are numbered with Arabic numerals. Authors should insert notes by using the footnote/endnote function in MS Word.

8. Tables

Each Table should be self-explanatory as far as possible. The heading should be fairly brief, but additional explanatory material may be added in notes which will appear immediately below the Table. Such notes should be clearly set off from the rest of the text. The table should be numbered with a Roman numeral, and printed on a separate page.

9. Figures

The same comments apply, except that Figures are numbered with Arabic numerals. Figure headings are also placed below the Figure. Example: Figure 1.

10. References

References should be in a separate alphabetical list; they should not be incorporated in the notes. Use the APA form of reference.

11. Biographical statement

The biosketch in Padchinha appears immediately after the references. It should be brief and include year of birth, highest academic degree, year achieved, where obtained, position and current institutional affiliation. In addition authors may indicate their present main research interest or recent (co-)authored or edited books as well as other institutional affiliations which have occupied a major portion of their professional lives. But we are not asking for a complete CV.

12. Proofs and reprints

Author's proofs will be e-mailed directly from the publishers, in pdf format. If the article is co-authored, the proofs will normally be sent to the author who submitted the manuscripts. (Corresponding author). If the e-mail address of the corresponding author is likely to change within the next 6–9 months, it is in the author's own interest (as well as ours) to inform us: editor's queries, proofs and pdf reprints will be sent to this e-mail address. All authors (corresponding authors and their co-authors) will receive one PDF copy of their article by email.

13. Copyright

The responsibility for not violating copyright in the quotations of a published article rests with the author(s). It is not necessary to obtain permission for a brief quote from an academic article or book. However, with a long quote or a Figure or a Table, written permission must be obtained. The author must consult the original source to find out whether the copyright is held by the author, the journal or the publisher, and contact the appropriate person or institution. In the event that reprinting requires a fee, we must have written confirmation that the author is prepared to cover the expense. With literary quotations, conditions are much stricter. Even a single verse from a poem may require permission.